0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हि. ४५१

हिन्दी-काव्यानुशासन

हिन्दी साहि.

लेखक—

महेन्द्र मिश्र

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत)

Acc. No. - ८५३२

प्रकाशक—

राजवल्लभ पाठक,

व्याकरणतीर्थ

...णु प्रकाशनम्, देव (गया)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundi

l Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

हि-४५२१

उच्चतर कक्षाओं के विद्यार्थियों एवं
जिज्ञासु पाठकों के लिए सर्वोत्तम पुस्तक

हिन्दी-काव्यानुशासन

[काव्य के विभिन्न अंगों, उपांगों का
सुगम शास्त्रीय विवेचन]

लेखक
महेन्द्र मिश्र
एम. ए. (हिन्दी, संस्कृत) रिसर्च स्कॉलर

Acc. No. ८५५२

प्रकाशक
श्री राजवल्लभ पाठक, व्या० तीर्थ
विष्णु प्रकाशनम्, देव (गया)

प्रथम संस्करण १०००] [मूल्य १·७५ पैसा

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

प्रकाशक :

श्री राजवल्लभ पाठक, व्या० तीर्थ

विष्णु प्रकाशनम्, देव (गया)

[पुस्तक सम्वन्धी सभी अधिकार लेखक और प्रकाशकाधीन]

मुद्रक—

विश्वनाथ भार्गव

मनोहर प्रेस,

जतनबर, वाराणसी

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

जहानाबाद निवासी

पितृतुल्य वैद्य-शिरोमणि

पं० गंगाधर मिश्र

के कर - कमलों में

सादर समर्पित

आदरणीय,

आपके स्नेह की प्रेरणादायिनी छाँह में वर्धित इस अकिञ्चन की यह भेंट स्वीकार हो।

विनयावनत,

महेन्द्र

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

भूमिका

आज के व्यस्त जीवन में काव्य का अध्ययन, मनन आनन्द का कारण है। काव्य का शास्त्रीय विवेचन भरतमुनि के काल से ही प्रारंभ है। इसके विभिन्न अंगों का ज्ञान काव्यास्वाद में वृद्धि करता है एवं काव्य-लेखन को प्रोत्साहित करता है। हिन्दी भाषा में काव्य के शास्त्रीय अध्ययन का इतिहास कोई पुराना नहीं है। इस क्षेत्र में कार्य करनेवाले विद्वानों ने संस्कृत की पुरानी परिपाटी के अनुसार ही विषय के विस्तार को प्रमुखता दी है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य के विद्वानों ने पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों साहित्य के अध्ययन का प्रयास किया है। उनका यह प्रयास अवश्य ही प्रशंसनीय एवं उपादेय है। काव्य के विद्वानों के लिए उन पुस्तकों का काफी महत्व है।

काव्य की विभिन्न शैलियों का अध्ययन सुगम और सरल हो, इस दिशा में लेखकों का ध्यान तब गया जब शिक्षा-विभाग ने इसका परिचयात्मक अध्ययन उच्चतर विद्यालयों एवं महाविद्यालय के प्रारंभिक वर्गों के लिए अनिवार्य बना दिया। इन पाँच-सात वर्षों में मेरी जानकारी में पचासों पुस्तकें निकली होंगी। उन्हें देखने पर मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि इन पुस्तकों में कुछ तो अधूरी हैं और कुछ कठिन। कुछ तो मात्र पर्चेबाजी है।

इस पुस्तक के लेखक श्री महेन्द्र मिश्र जी से, जो हमारे विद्यालय में उच्चतर कक्षाओं के लिये सुयोग्य अध्यापक हैं, इस विषय पर चर्चा हुई तो उन्होंने उपर्युक्त पुस्तकों की त्रुटियों को देखते हुए एक सर्वांगपूर्ण पुस्तक लिखने का विचार किया। आज मैं उस पुस्तक को सामने देख रहा हूँ, मुझे अत्यन्त ही प्रसन्नता है कि लेखक ने वस्तुतः इसे सर्वांगपूर्ण और सुगम बनाया है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

आरंभ में कला का महत्व बताते हुए काव्य पर विभिन्न विद्वानों के विचारों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। रस के अध्याय में लेखक ने पाश्चात्य और पौर्वात्य विद्वानों के मतों का मंथन करते हुए अपना प्रामाणिक निष्कर्ष दिया है। इस क्रम में रसाभास, दोष, ध्वनि आदि कठिन विषयों का परिचयात्मक अध्ययन काव्य के प्रारंभिक पाठकों के लिए अत्यन्त ही उपादेय है। अलंकारों, छन्दों एवं शब्द की विभिन्न शक्तियों का अत्यन्त ही सुन्दर और उपादेय विवेचन प्रस्तुत किया गया है। मुझे यह कहते हुए गौरव अनुभव हो रहा है कि इस दिशा में लिखी गई सभी पुस्तकों से यह उत्तम है। आशा है छात्रवर्ग एवं पाठक इसे अपनाकर लेखक को प्रोत्साहित करेंगे।

अयोध्या प्रसाद
प्राचार्य;
गाँधी स्मारक बहूद्देशीय उच्चतर विद्यालय
जहानाबाद, गया।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

लेखक का निवेदन

भगवान् शिव की असीम अनुकम्पा से आज इस पुस्तक को आपके समक्ष रखते हुए प्रसन्नता हो रही है। पिछले आठ-दस वर्षों के अध्यापन के क्रम में मुझे इस विषय पर पुस्तकों का अभाव बड़ा खटकता रहा। यह वात नहीं कि इस विषय पर पुस्तकें हैं ही नहीं। मान्य विद्वानों ने काफी गम्भीरता से इसका विवेचन किया है। पर लघु मस्तिष्क के छात्रों एवं प्रारंभिक पाठकों के लिए वे दुरूह हैं, इसमें सन्देह नहीं। मैंने प्रयास किया है कि पुस्तक सर्वांगपूर्ण होते हुए भी संक्षिप्त और सरल हो। इस दिशा में प्रेरणा देनेवालों में मैं अपने प्राचार्य महोदय को कभी भूल नहीं सकता। वन्धु तरुण जी अपनी चर्चाओं से मुझे सदा उत्साहित करते रहे हैं। श्री गंगाधर झा जी, प्रिय मित्र नारायण प्रसाद दास जी, आचार्य गिरि जी आदि धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अपना अमूल्य सुझाव दिया।

आचार्य पं० श्री रुद्रदत्त पाठक जी का नाम मैं कैसे भूल सकता हूँ जिन्होंने अपने मधुर स्नेह से पुस्तक को मुद्रण की अवस्था तक पहुँचाने में सहायता दी है। वे प्राचीन संस्कृति के प्रतीक और ज्ञान की सजीव प्रतिमा हैं—उन्हें मैं अपना प्रणाम ही निवेदित कर सकता हूँ। डॉ० नगेन्द्र, आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा, कन्हैयालाल पोद्दार, कविराज विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ, आचार्य मम्मट, अरस्तू आदि के प्रति एवं उन लेखकों के प्रति आभार प्रगट करता हूँ जिनसे ज्ञात-अज्ञात रूप में कुछ सहायता मिली है। प्रिय छात्र लक्ष्मीनारायण भदानी, अनुज शशिशेखर आदि ने किसी न किसी रूप में मेरी सहायता की है, उन्हें मैं कैसे भूल सकता हूँ। विष्णु प्रकाशनम् के वन्धु श्री राजवल्लभ पाठक जी के अमूल्य सहयोग के विना यह पुस्तक शायद ही मुद्रित हो

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पाती, अतः उन्हें धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता। अन्त में मैं अपनी पत्नी का भी आभार मानता हूँ जिसने स्वयं अलंकारहीन होकर भी इस पुस्तक के अलंकरण में सहयोग दिया है। स्वयं कष्टों में रहते हुए भी लेखक की सुविधा देकर उसने अमूल्य सहयोग दिया है।

मैं पुस्तकगत त्रुटियों की ओर विद्वानों की सम्मति का आकांक्षी हूँ।

वसंत पंचमी
सं० २०२४, १९६८ ई०
शोकहरा, बरौनी, (मुंगेर)

महेन्द्र मिश्र

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

प्रकाशकीय वक्तव्य

श्री विष्णु प्रकाशनम् का यह चतुर्थ पुष्प आपकी सेवा में निवेदित है। इसके विद्वान् लेखक श्री महेन्द्र मिश्र जी ने अत्यन्त ही परिश्रम और मनोयोग से इसे सुगम और परिपूर्ण बनाने का प्रयास किया है। इसमें विद्यार्थियों के लिए मार्गदर्शन तो है ही साथ ही काव्य के जिज्ञासु पाठकों के लिए भी उत्तम है। आशा है पाठक इसे अपनायेंगे।

राजवल्लभ पाठक,
व्याकरणतीर्थ

सम्पादकीय

श्री महेन्द्र मिश्र द्वारा लिखित हिन्दी-काव्यानुशासन काव्य के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त ही उपयोगी पुस्तक है। काव्य के अंगों-उपांगों का सरस शैली में विवेचन करके लेखक ने प्रशंसनीय कार्य किया है।

—आचार्य विष्णुवल्लभ शास्त्री
सम्पादक,
हरिदास सेमिनरी, गया।

अनुशंसा

अत्यन्त ही सुन्दर—भाई आपने मात्र विद्यार्थियों के लिए ही नहीं—काव्य के जिज्ञासु पाठकों के लिए भी अत्यन्त ही उपयोगी कार्य किया है। यह पुस्तक सब पढ़ें—मेरी यही कामना है।

—प्रो० तरुण

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

विषय-सूचो

अध्याय—१ १–५

कला की परिभाषा और महत्व, काव्य की परिभाषा एवं उद्देश्य, विभिन्न विद्वानों के विचार, काव्य के भेद—मुक्तक काव्य, प्रवन्ध काव्य, अर्थ-तत्त्व की दृष्टि से काव्य के भेद एवं तत्त्व-निर्देश।

अध्याय—२ ५–३६

काव्य में रस—रस शब्द के विभिन्न अर्थ, काव्य में रस का अर्थ। रस की निष्पत्ति। भाव और स्थायीभाव। स्थायीभाव के भेद। रस की अनुभूति के मूल कारण। रस के भेद—विभाव, आलंबन विभाव उद्दीपन विभाव, अनुभाव, संचारी भाव। रस निष्पत्ति और आचार्य चतुष्टय—भट्ट लोल्लट, आचार्य शंकुक, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त। रसों के लक्षण एवं उदाहरण-–शृंगार रस—लक्षण, भेद, संयोग शृंगार-–लक्षण, उदाहरण, विप्रलंभ शृंगार—लक्षण, उदाहरण, हास्यरस—लक्षण, उदाहरण, करुण रस—लक्षण, उदाहरण, वीर रस—लक्षण, प्रभेद उदाहरण, रौद्र रस—लक्षण, उदाहरण, भयानक रस—लक्षण, उदाहरण, वीभत्स रस—लक्षण, उदाहरण, अद्‌भुत रस—लक्षण, उदाहरण, शान्ति रस—लक्षण, उदाहरण, वत्सल रस—लक्षण उदाहरण।

रसों में परस्पर भेद—करुण रस और विप्रलंभ शृङ्गार, वत्सल रस और शृंगार रस, वीर रस और रौद्ररस, भयानक रस और वीभत्स रस।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

रस का आनन्द : आनन्द का रस, अदोष रस : सदोष प्रक्रिया ।

अध्याय—३ ३७-४१

पारिभाषिक टिप्पणियाँ, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता, ध्वनि, गुण—ओज, प्रसाद, माधुर्य, रीति ।

अध्याय ४ ४१-६८

अलंकार—सामान्य अर्थ, काव्य में उपयोगिता और महत्त्व, भेद—शब्दालंकार, अर्थालंकार, उपमालंकार—लक्षण, आचार्य रुय्यक का वर्गीकरण ।

शब्दालंकार—लक्षण एवं महत्त्व, प्रभेद—अनुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास, अन्त्यानुप्रास । श्लेष, यमक, वक्रोक्ति, श्लेष वक्रोक्ति, काकु वक्रोक्ति, पुनरुक्तवदाभास, पुनरुक्ति ।

अर्थालंकार—लक्षण एवं महत्व, उपमा, अनन्वय, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, उल्लेख, आक्षेप, अप्रस्तुत-प्रशंसा, पर्यायोक्ति, समासोक्ति, दीपक, परिसंख्या, संदेह, अप्रस्तुति, अतिशयोक्ति, असंगति, विशेषोक्ति, विभावना, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, निदर्शना, प्रतिवस्तूपमा, भ्रान्तिमान, स्वभावोक्ति, व्याजोक्ति, व्याजस्तुति ।

उभयालंकार—लक्षण एवं उदाहरण, संकर, संसृष्टि, अलंकार युग्मों में परस्पर भेद—उपमा और अनुप्रास, उपमा और रूपक, रूपक और अतिशयोक्ति ।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

अध्याय—५ ६९–८१

छन्द—महत्व, विकास, परिभाषाएँ—मात्रिक और वर्णिक छन्द, पाद, वर्ण, मात्रा, गण, यति, गति। कुछ प्रमुख छन्दों के लक्षण एवं उदारण—चौपाई, कुण्डल, रोला, दिगपाल, गीतिका, चोंपैइया या चतुष्पदी, आल्हा या वीर छन्द, बरवै, दोहा, सोरठा, कुण्डलिया, इन्द्रब्रजा, भुजंगप्रयात, द्रुतविलंबित, मालिनी, मंदाक्रान्ता, मत्तगयंद, सवैया, मुक्त छन्द।

अध्याय—६ ८२–९०

शब्द-शक्ति—परिभापा, ध्वनि की महत्ता, तीन प्रकार के शब्द—वाचक, लक्षक, व्यंजक, शक्तियाँ—अभिधा, लक्षणा, व्यंजना।

वाचक शब्द—संकेत-ग्रह, अभिधा शक्ति, लक्षण शब्द–लक्षणा शक्ति, व्यंजक शब्द।

व्यंजना शक्ति—शाब्दी व्यंजना और आर्थी व्यंजना, शब्द-शक्तियों में परस्पर भेद—अभिधा और लक्षणा, अभिधा और व्यंजना, लक्षणा और व्यंजना।

——

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

अध्याय—१

काव्य की परिभाषा

मानव-जीवन में सौन्दर्य की पिपासा युगों से रही है। एक विशिष्ट आनन्द की उपलब्धि की प्रेरणा से मानव सतत कर्म-निरत रहा है। कला का जन्म मनुष्य की इसी इच्छा से हुआ है। कला का अर्थ ही है—कलन करना—सुन्दर करना। मानव-जीवन को जो सुन्दर बनावे वही कला है। कला ही जाति या राष्ट्र की संस्कृति की द्योतिका है।

उपयोगिता की दृष्टि से इसके दो भेद होते हैं—उपयोगी कला और ललित कला। ललित कला की पाँच कोटियाँ हैं जो सूक्ष्म आधारों की दृष्टि से क्रमिक रूप से उत्तमोत्तम होती गई हैं। ये हैं—वास्तुकला, मूर्त्तिकला, चित्रकला, संगीतकला और काव्यकला। काव्यकला, सूक्ष्म आधार की दृष्टि से सर्वोत्तम कला मानी गई। संस्कृत के प्राचीन विद्वानों ने काव्य-कला के अन्तर्गत साहित्य की सभी शैलियों को स्वीकार किया है।

नाटक के आधार पर काव्य की परिभाषा देते हुए आद्याचार्य भरत मुनि ने काव्य में सर्व-सुगमता, मृदुललित पदों का संगठन, जनपद को आनन्दित करने की शक्ति आदि की आवश्यकता बतायी। इन्होंने काव्य में नाटक के महत्व को स्वीकार किया।

आचार्य मम्मट के शब्दों में काव्य की परिभाषा इस प्रकार है—**तद्-दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति। पुनः क्वापि···**—काव्य प्रकाश।

अर्थात् काव्य (तत्) दोषरहित, गुणयुक्त और कभी-कभी अलंकृत शब्दार्थ को कहते हैं।

कविराज विश्वनाथ के शब्दों में—**'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'** अर्थात् रसमय वाक्य ही काव्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

पंडितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक वाक्य को काव्य की संज्ञा दी—'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'। इन सभी परिभाषाओं में कविराज विश्वनाथ की परिभाषा को अधिक मान्यता मिली हुई है।

पाश्चात्य कवियों एवं समीक्षकों ने भी काव्य की व्याख्या अपने ढंग से की है। शेली का कथन है—'Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds'. अर्थात् कविता हृदय के आत्यंतिक आनन्द के सुखद क्षणों का लेखा है।

मिल्टन के अनुसार कविता सरल, प्रत्यक्ष एवं रागात्मक होनी चाहिये—'Poetry should be simple, sensous and passionate'. वर्ड्सवर्थ के अनुसार—'Poetry is the spontaneious overflow of powerful feelings. It takes its origin recollected in tranquility'. अर्थात् कविता शक्तिशाली भावनाओं का स्वाभाविक उद्रेक है जो एकान्त में अपना उत्स संग्रह करती है। उत्तमोत्तम शब्दों के उत्तमोत्तम क्रम-विधान को काव्य की संज्ञा देकर कॉलरिज ने भाषा और शैली की प्रधानता को स्वीकार किया। उनका कथन है—'Poetry is the best words in the best order'.

कार्लाइल ने कविता में संगीत-तत्व को प्रधानता दी—'Poetry we call musical thought'.

मैथ्यू आर्नल्ड ने कविता को जीवन की आलोचना कहा—'Poetry is at bottom a criticism of life'.

हड्सन ने कल्पना और मनोयोग द्वारा जीवन की व्याख्या को कविता की संज्ञा दी—'Poetry is the interpretation of life through imagination'.

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

इन सभी परिभाषाओं में वड्‌सवर्थ की परिभाषा अधिक व्यापक मानी गई है।

हिन्दी के आधुनिक विचारकों ने भी अपने-अपने ढंग से कविता की परिभाषा प्रस्तुत की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे ही कविता कहते हैं"—चिन्तामणि।

महादेवी वर्मा के अनुसार—"काव्य कवि-विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत हो जाती हैं।"

श्री सुमित्रानन्दन पंत ने परिपूर्ण क्षणों की वाणी को ही कविता कहा।

इन सभी परिभाषाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि कविता सरस, भावपूर्ण और आनन्द प्रदान करनेवाली लयात्मक रचना है। काव्य के प्रयोजन पर टिप्पणी करते हुए अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' में मम्मट ने कहा–

काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

अर्थात् यशप्राप्ति, धनलाभ, व्यवहारपटुता, अनिष्टनिवारण, अलौकिक आनन्दानुभूति और प्रेयसी की भाँति उपदेश देना ही काव्य का प्रयोजन है। आचार्य मम्मट ने प्रतिभा-निपुणता और सतत् अभ्यास को ही काव्य का कारण माना है।

शैली की दृष्टि से काव्य के तीन भेद हैं—गद्य, पद्य और चंपू। छन्द के वन्धन से मुक्त, बुद्धिप्रधान और बोलचाल के अनुकूल लिखी गई रचना गद्यकाव्य के अन्तर्गत आती है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

छंदानुकूल भावतत्त्व एवं कल्पनातत्त्व से युक्त रचना पद्य के अन्तर्गत आती है। गद्य और पद्यमिश्रित काव्य चंपूकाव्य कहलाता है, इसे मिश्रित काव्य भी कहते हैं। प्रयोजन की दृष्टि से काव्य के निम्नलिखित भेद हैं—

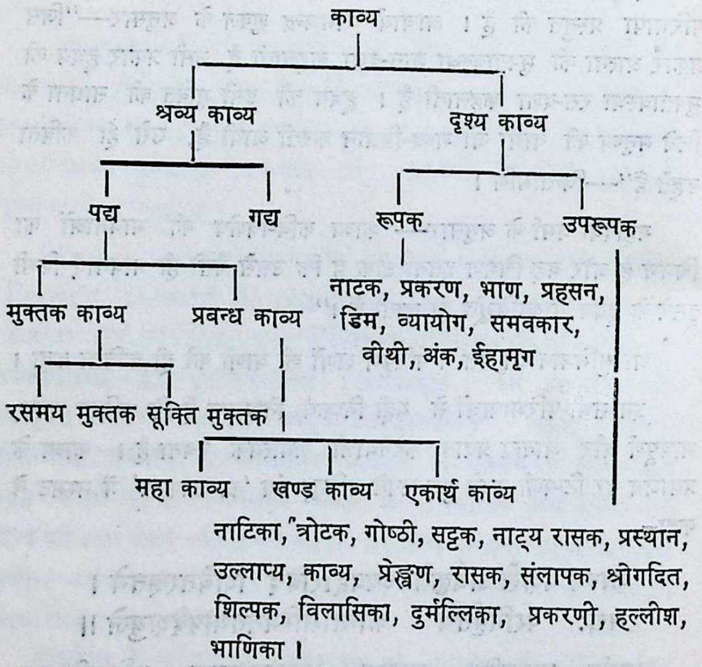

मुक्तक काव्य :—पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त रसोद्रेक करनेवाली रचना को मुक्तक काव्य कहते हैं। गीति-तत्त्व से परिपूर्ण रसमय रचना रसमयमुक्तक और सांसारिक अनुभव से पूर्ण चिन्तिनप्रधान सूक्तियाँ सूक्तिमुक्तक के अन्तर्गत आती हैं।

प्रवन्ध काव्य :—जब कोई कथा छन्दोवद्धरूप से पूर्वापर सम्बन्ध से युक्त होकर प्रस्तुत होती है तो प्रवन्ध काव्य का सृजन होता है।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

समग्र मानव-जीवन जब किसी प्रसिद्ध कथानक के द्वारा व्याख्यायित होता है तो महाकाव्य, और जीवन के किसी एक अंश की जब व्याख्या होती है तो खंडकाव्य का निर्माण होता है।

अर्थांतर की दृष्टि से काव्य के तीन भेद किये गये हैं—

उत्तम काव्य, मध्यम काव्य और चित्र काव्य।

जब व्यंग्यार्थ मुख्यार्थ से अधिक चमत्कारपूर्ण होता है तो उत्तम काव्य माना जाता है।

जब मुख्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ गौण हो जाता है तो मध्यम काव्य होता है और जब गुण और अलंकारों की इतनी प्रधानता रहती है कि व्यंग्यार्थ लुप्त हो जाता है तो चित्रकाव्य होता है। चित्रकाव्य को अधम काव्य भी कहते हैं।

काव्य के प्रमुख तीन तत्त्व माने गये हैं—भाव, भाषा और शैली। भाव काव्य-पुरुष के प्राण हैं एवं भाषा और शैली उसके शरीर।

अध्याय—२

काव्य में रस

काव्य अलौकिक आनन्द प्रदान करने का एक माध्यम है। अलौकिक आनन्द के तत्व ही काव्य के प्राण हैं। इस तत्व से वंचित काव्य प्राणहीन होता है।

काव्य में अलौकिक आनन्द प्रदान करने की शक्ति को ही हम रस की संज्ञा देते हैं। रस शब्द को हम कई अर्थों में प्रयुक्त करते हैं। व्यावहारिक क्षेत्र में रस से तात्पर्य तरल पदार्थ से है। आस्वाद (रस्यते आस्वाद्यते इति रसः) अर्थ में भी रस का प्रयोग किया जाता है। आध्यात्मिक

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

क्षेत्र में 'रस' ब्रह्म को कहा जाता है। 'रसो वै सः' से हम यही तात्पर्य निकालते हैं। दैनिक जीवन में 'रस' शब्द आनन्द के लिये भी आता है। 'जीवन में कोई रस नहीं रह गया है,' 'उसका जीवन सरस है' आदि वाक्यों में हम यही पाते हैं।

काव्यशास्त्र में रसशब्द काव्यानन्द के लिये प्रयुक्त हुआ है। काव्य के पढ़ने, सुनने या चिन्तन करने से हृदय में एक अलौकिक आनन्द की सृष्टि होती है, जो अनभिव्यक्त होती है। पाठक या श्रोता काव्यानन्द की इस मधुर धारा में भौतिक जगत के दुःख भूल जाता है और जीवन के लिये नयी आशा, नया उत्साह संग्रह कर पाता है। यही काव्यानन्द है। इसकी तुलना ब्रह्मानन्द से की गई है। इसीलिये काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है।

भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' में रस के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। भरत मुनि ने रस की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा—'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। बाद के आचार्य मम्मट ने इसी सूत्र की व्याख्या के क्रम में कहा कि आलम्बन विभाव से उद्बुद्ध, उद्दीपन विभाव से उद्दीप्त, व्यभिचारी या संचारी भाव से परिपुष्ट और अनुभाव के द्वारा व्यक्त हृदय का स्थायीभाव ही रस-दशा को प्राप्त होता है।

अतः काव्य के अध्ययन, मनन अथवा श्रवण के क्रम में विभाव आदि के संयोग से उत्पन्न होनेवाली हृदय की आनन्दात्मक वृत्तियाँ ही रस की संज्ञा से अभिहित की जा सकती हैं।

भाव और स्थायीभाव

'विकारो मानसो भावः' (अमरकोश), अर्थात् मन के विकार ही भाव हैं। भानुदत्त (रसतरंगिणी) के अनुसार रसानुकूल मन के विकार को भाव कहते हैं। अज्ञायमान वस्तु का ज्ञायमान होना ही विकार कहा

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

जाता है—"रसानुकूलो विकारो भावः। विकारोऽन्यथा भावः।" मैकडूगल के अनुसार मनुष्य की सहज प्रवृत्तियों का क्रियात्मक प्रकाश ही भाव है। भाव के अन्तर्गत लौकिक और काव्यगत दोनों प्रकार के मनोविकार आते हैं। यद्यपि काव्यगत मनोविकार लौकिक मनोविकार से भिन्न होते हैं, फिर भी इनका आधार लौकिक मनोविकार ही हैं।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार—'वाह्य जगत् के सम्पर्क से उत्पन्न मन के विकार जो चेतना को व्याप्त कर लेते हैं; भाव कहलाते हैं।'

मनुष्य के हृदय में स्वाभाविक रूप से कुछ मूल वृत्तियाँ विराजित रहती हैं। स्थायीभावों का सम्वन्ध मनुष्य की उन्हीं वृत्तियों से है। मनुष्य की वृत्तियों की अभिव्यक्ति अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के रूप में होती है। यही कारण है कि स्थायीभावों का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।

स्थायीभाव हमारे हृदय में स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं। कारण के अभाव में भी उनकी सत्ता रहती है। मानव-हृदय में वाहरी परिस्थितियों के योग से भावनाओं की तरंगें उठा करती हैं। इन भाव-तरंगों के मेल से अनेक प्रकार के मनोविकार उठते रहते हैं। इन मनोविकारों को डॉ० नगेन्द्र ने सात भागों में बाँटा है—शुद्ध, मिश्र, व्युत्पन्न, मन्द, तीव्र, अस्थायी और स्थायी। इनमें से रति, हास्य, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद ये नौ मनोविकार अन्य मनोविकारों से अधिक स्थायी, प्रभावशाली एवं पुष्ट हैं। इन मनोविकारों से ही रसपरिपाक सम्भव है। अतः इन्हीं मनोविकारों को स्थायीभाव कहा गया।

राग और द्वेष हमारी आत्मा के दो मूलभूत अभिव्यक्त गुण हैं। हमारे हृदय में जितने भी मनोविकार उठते हैं सभी राग और द्वेष से ही सम्वन्धित होते हैं। राग के अन्तर्गत आनेवाले स्थायीभाव हैं—रति, हास, उत्साह और विस्मय। द्वेष के अन्तर्गत शोक, क्रोध, भय और जुगुप्सा आते हैं। राग और द्वेष का सामंजस्य ही शम नामक स्थायीभाव कहलाता है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

रस की अनुभूति के मूल कारण :—आलम्बन और उद्दीपन के सम्पर्क में आकर मन के भीतर स्थिर-रूप में रहनेवाला स्थायीभाव ही रस-रूप में व्यक्त होता है और हमारे हृदय में एक अपूर्व आनन्द का संचार कर देता है। जिस प्रकार नये घड़े में जल के छींटें देने से सोंधी गन्ध निकलती है उसी प्रकार बाह्य परिस्थितियों (आलम्बन, उद्दीपन) के सम्पर्क से हमारे हृदय में जिस अपूर्व आनन्द की सृष्टि होती है उसे ही रस कहते हैं।

हमारे हृदय की मूल वृत्तियों को प्रेरित करनेवाला मनःसम्वेग है। इसीलिए आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार स्थायीभाव के मूल में मनः-सम्वेग की स्थिति रहती है। इन मनःसम्वेगों से हमारी मूल वृत्तियाँ प्रेरित होती हैं और अनुभाव, विभाव आदि के सम्पर्क में आकर रस की सृष्टि करती हैं। प्राचीन साहित्य-शास्त्र और आधुनिक मनोविज्ञान दोनों का इस विषय पर मतैक्य है।

भरत मुनि ने नाट्य-शास्त्र में आठ रसों का वर्णन किया है :—

> शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
> वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥

अर्थात् शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत ये आठ रस नाटक में होते हैं। उद्भट नामक विद्वान ने नौ रसों का उल्लेख किया है।

> शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
> वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः॥

कविराज विश्वनाथ ने इन नौ रसों को मानते हुए वत्सल, स्नेह आदि स्थायीभाव से वात्सल्य रस का कथन किया है। इस प्रकार रसों की संख्या दस मानी गई। रीति-काल के आचार्यों ने भी इन्हीं दस रसों की चर्चा की है। यद्यपि भानुदत्त आदि संस्कृत के आचार्यों ने और भी अधिक

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

रसों की कल्पना की है ; लेकिन खंडन की खराद पर बाकी रस खरे नहीं उतर सके, केवल दस रसों की ही चर्चा रह गयी ।

ये दस रस निम्नलिखित दस स्थायीभावों से निष्पन्न होकर पाठक, श्रोता अथवा दर्शकों के हृदय में अलौकिक आनन्द की सृष्टि करते हैं :—

स्थायी भाव	रस
(१) रति	शृंगार
(२) हास	हास्य
(३) शोक	करुण
(४) क्रोध	रौद्र
(५) उत्साह	वीर
(६) भय	भयानक
(७) जुगुप्सा	वीभत्स
(८) विस्मय	अद्भुत
(९) निर्वेद	शान्त
(१०) वत्सल या स्नेह	वात्सल्य

भरत मुनि के अनुसार अनुभाव, विभाव और संचारी भावों के संयोग से (स्थायीभाव के साथ) रस की निष्पत्ति होती है—**'विभावानुभाव-संचारिभावसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।'**

यहाँ विभाव, अनुभाव, संचारी भाव एवं रस-निष्पत्ति की व्याख्या अपेक्षित है ।

विभाव—जिन कारणों से हमारे हृदय के स्थायीभाव जागरूक होकर रस-रूप धारण करते हैं, उन्हें विभाव कहते हैं ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार—"विभाव से अभिप्राय उन वस्तुओं या विषयों के वर्णन से है जिनके प्रति किसी प्रकार का भाव या संवेदना होती है ।"

विभाव दो प्रकार के होते हैं—आलंबन विभाव और उद्दीपन विभाव ।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

आलंबन विभाव—जिनका आधार ग्रहणकर स्थायीभाव रस-रूप में निष्पन्न होते हैं उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं। किसी नायिका को देखकर यदि नायक के हृदय में स्थित रति स्थायीभाव रस-रूप में स्वाद्य होता है तो नायक एवं नायिका रस के आलम्बन होंगे। आलम्बन के दो प्रकार है—विषय एवं आश्रय। जिस वस्तु या विषय के कारण स्थायीभाव जागरित होते हैं उन्हें विषय कहते हैं एवं जिसके हृदय में स्थायीभाव जागरित होते हैं उसे आश्रय कहते हैं। यथा—

> **बसो मेरो नैनन में नंदलाल।**
> **मोहिनी मूरत साँवली सूरत नैना बने विशाल॥**

यहाँ कवयित्री आश्रय है और नंदलाल विषय अथवा आलंबन। आलंबन स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों हो सकते हैं।

उद्दीपन विभाव—स्थायीभावों को उद्दीपित करके उनकी आस्वाद-योग्यता को बढ़ानेवाले कारण उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। प्रत्येक रस के अपने उद्दीपन विभाव होते हैं। श्रृंगार-रस के उद्दीपन विभाव जहाँ नदी-तट, चाँदनी, पुष्पवाटिका आदि हैं, वहीं करुण रस के उद्दीपन विभाव, पुत्र-शोक, श्मशान आदि हैं।

उद्दीपन विभाव आश्रयगत और विषयगत भी होता है। प्रभाव की दृष्टि से भी इन्हें हम दो खंडों में बाँटते हैं—पात्रगत तथा बहिर्गत। पात्रगत उद्दीपन पात्र के रूप, गुण एवं चेष्टाओं से सम्बन्धित होता है एवं बहिर्गत उद्दीपन प्रकृति के बाह्य तत्त्वों से सम्बन्धित होता है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक में दुष्यन्त का आकर्षण शकुन्तला के सौन्दर्य से जब उद्दीप्त होता है उस समय उद्दीपन पात्रगत है और पुनः वन-सौन्दर्य से उसका रति स्थायीभाव श्रृंगार रस के रूप में जब उद्दीप्त होता है तो उद्दीपन बाह्य प्रकृतिगत है।

अनुभाव—स्थायीभाव के रस-रूप में उद्दीप्त हो जाने पर जो चेष्टाएँ अथवा कार्य व्यक्त होते हैं उन्हें अनुभाव कहते हैं। अनुभाव के

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

द्वारा ही हमें स्थायीभावों का अनुभव होता है। अनुभाव के चार भेद हैं—कायिक, मानसिक, आहार्य और सात्विक। कायिक से कृत्रिम आंगिक चेष्टाओं का, मानसिक से अन्तःकरण की वृत्तियों का, आहार्य से कृत्रिम वेश-रचना का और सात्विक अनुभाव से शरीर के अकृत्रिम अंगविकार का बोध होता है। सात्विक अनुभाव के आठ प्रकार हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य अश्रु और प्रलय।

विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति विभिन्न अनुभावों द्वारा होती है। वीर रस के अनुभाव श्रृंगार रस के लिये उपयुक्त नहीं हैं।

संचारीभाव—स्थायीभाव की पुष्टि के लिये तत्पर और उन्हीं के अन्तर्गत आविर्भूत और तिरोहित होनेवाले भाव संचारीभाव कहलाते हैं। स्थायीभावों में संचरण करने के कारण ही इनका नाम संचारी पड़ा है। भरत मुनि ने तेंतीस संचारियों का वर्णन किया है—१. निर्वेद, २. आवेग, ३. दैन्य, ४. श्रम, ५. मद, ६. जड़ता, ७. उग्रता, ८. मोह, ९. विबोध, १०. स्वप्न, ११. अपस्मार, १२. गर्व, १३. मरण, १४. आलस्य, १५. अमर्ष, १६. निद्रा, १७. अवहित्था, १८. औत्सुक्य, १९. उन्माद, २०, शंका, २१. स्मृति, २२. मति, २३. व्याधि, २४. सन्त्रास, २५. लज्जा, २६. हर्ष, २७. असूया २८. विषाद, २९. धृति, ३०. चपलता, ३१. ग्लानि, ३२. चिन्ता, ३३. वितर्क।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने संचारी के दो पक्ष माने हैं—चित्त-विकार और भावनिरूपण। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रस-मीमांसा में संचारीभावों की पाँच कोटियाँ स्थिर की हैं—१. स्वतन्त्र विषययुक्त भाव, २. मन के वेग, ३. अन्य अन्तःकरण प्रवृत्ति, ४. मानसिक अवस्था, ५. शारीरिक अवस्था। आचार्य शुक्ल का कथन है कि सुखात्मक भावों के साथ सुखात्मक संचारी और दुःखात्मक भावों के साथ दुःखात्मक संचारी परस्पर अविरुद्ध होंगे। इसी प्रकार सुखात्मक भाव के साथ दुःखात्मक संचारी और दुःखात्मक के साथ सुखात्मक संचारी विरुद्ध होंगे।

Acc. No. ८५६२ (८५६२)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

उभयात्मक संचारी सुखात्मक भी हो सकते हैं और दुःखात्मक भी, जैसे आवेग हर्ष में भी होता है और भय आदि में भी।

रस-निष्पत्ति—भरत मुनि ने "विभावानुभाव-संचारि-संयोगाद्रस-निष्पत्तिः" कहकर विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग को ही रस-निष्पत्ति का कारण बताया। बाद के आचार्यों ने भरतमुनि द्वारा कथित सूत्र के 'संयोग' और 'निष्पत्ति' शब्द के अनेक अर्थ बताए। इन आचार्यों में चार आचार्यों के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं जो आचार्य-चतुष्टय के नाम से भी जाने जाते हैं। ये हैं—भट्ट लोल्लट, आचार्य शंकुक, भट्ट-नायक और अभिनव गुप्त। यहाँ हम उनके मतों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना अपेक्षित समझते हैं।

भट्ट लोल्लट—इनके मत को आरोपवाद या उत्पत्तिवाद कहा गया है। जिस प्रकार अँधेरे में रस्सी देखकर हमें सर्प का भ्रम हो जाता है और हम भय से उछल पड़ते हैं, उसी प्रकार दुष्यन्त अथवा शकुन्तला या राम अथवा सीता का अभिनय करनेवाले सामान्य अभिनेता में हम असली दुष्यन्त-शकुन्तला या राम-सीता का आरोप करते हैं। इसीलिये इस सिद्धान्त का नाम आरोपवाद पड़ा। अभिनेताओं की अभिनय-कुशलता के कारण दर्शकों के हृदय में स्थायीभावों की प्रतीति होती है और इसी प्रतीति के कारण दर्शकों के हृदय में चमत्कारजन्य आनन्दानुभूति की उत्पत्ति होती है। इसीलिये इस सिद्धान्त को उत्पत्तिवाद भी कहा गया है।

इस मत की त्रुटि यह है कि सूत्र के व्याख्याता ने यह नहीं बताया है कि दर्शकों के हृदय में रस की अनुभूति क्यों होती है। जिस चरित्र का अनुकरण अभिनेता द्वारा किया जाता है वह चरित्र भी प्रस्तुत नहीं है। अतः नकली अभिनेता में रस की उत्पत्ति भला कैसे हो सकती है?

आचार्य शंकुक—इन्होंने अपनी व्याख्या में अनुमान को प्रधानता दी है। चित्र में अंकित घोड़े को देखकर हम तुरन्त कहते हैं—यह घोड़ा

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

है। लेकिन यह कहना न तो सत्य है और न मिथ्या ही। न संशय है और न सादृश्य-रूप प्रतीति ही। यह ज्ञान की इन चारों कोटियों से भिन्न अनुमान है। अभिनेता कृत्रिम रूप से वास्तविक राम अथवा सीता के अनुभावों को प्रकट करता है। दर्शक अभिनेता के कृत्रिम अभिनय के सौन्दर्य को देखकर वास्तविक चरित्र का अनुमान करके रस का आस्वादन करता है।

लेकिन हमें यह जान लेना है कि अनुमान से होनेवाला ज्ञान परोक्ष है, प्रत्यक्ष नहीं। यहाँ आचार्य शंकुक का अनुमान भी कृत्रिमता पर टिका हुआ है, अतः इसके आधार पर दर्शकों को ठीक तरह से रसास्वादन नहीं हो सकता।

भट्ट नायक—इनके सिद्धान्त को मुक्तिवाद कहा गया है। इनके अनुसार अभिनेता और अभिनेय वस्तु में रसानुभूति नहीं होती। रसानुभूति वस्तुतः दर्शकों के हृदय में होती है। इनके मतानुसार "अभिधा या लक्षणा से काव्य का जो अर्थ उपस्थित होता है उसको शब्द का भावकत्व-व्यापार परिष्कृत कर सामाजिक के उपभोग के योग्य बना देता है। काव्य से जो अर्थ अभिधा द्वारा उपस्थित होता है वह एक विशेष नायक या विशेष नायिका की प्रेम-कथा आदि के रूप में व्यक्ति-विशेष से सम्बद्ध होता है। इस रूप में सामाजिक के लिये उसका कोई उपयोग नहीं होता है। शब्द का भावकत्व-व्यापार इस कथा में परिष्कार कर उसमें से व्यक्ति-विशेष के सम्बन्ध को हटाकर उसका साधारणीकरण कर देता है। उस साधारणीकरण के बाद सामाजिक का उस कथा के साथ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। अपनी रुचि या संस्कार के अनुरूप सामाजिक उस कथा का एक पात्र स्वयं बन जाता है। इस प्रकार असली नायक-नायिका की जो स्थिति उस कथा में थी, साधारणीकरण व्यापार के द्वारा सामाजिक को लगभग वही स्थान मिल जाता है। यह शब्द का वाचकत्व नामक दूसरे व्यापार का प्रभाव हुआ। जब भावकत्व-व्यापार से काव्यार्थ का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

साधारणीकरण हो जाता है तब शब्द का भोजकत्व नामक तीसरा व्यापार सामाजिक को रस का साकारात्मक भोग करवाता है। यही मुक्तिवाद है।'' - आचार्य विश्वेश्वर। भट्टनायक का 'भावकत्व' और ''भोजकत्व' व्यापार अनुभवसिद्ध नहीं है। जिस स्थायीभाव का भोग बतलाया गया है उसकी स्थिति अभिनेता में है या दर्शक में अथवा जिस चरित्र का अभिनय किया जा रहा है उसमें है, यह स्पष्ट नहीं किया गया है।

अभिवन गुप्त—इन्होंने आनन्दवर्धन के ध्वनि-सिद्धान्तों के आधार पर अभिव्यक्तिवाद का प्रतिपादन किया है। इनका मत वाद के प्रायः सभी आचार्यों के द्वारा मान्य हुआ है। इनके अनुसार सामाजिकों के हृदय में स्थायीभाव वासना या संस्कार-रूप से वर्त्तमान रहते हैं। ये स्थायीभाव काव्यपाठ, श्रवण अथवा दर्शन से विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से व्यंजनावृत्ति के विभावन व्यापार द्वारा रसानुभूति के कारण बनते हैं। इसके अनुसार साधारणीकरण का मुख्य कारण व्यंजना का विभावन व्यापार है। जब हम नाटक या सिनेमा देखने जाते हैं तो अभिनेता को अपने से अभिन्न मानते हैं और उनके कार्य-व्यापारों का भी अभिन्नता से अनुभव करते हैं। इस प्रकार दो की स्थिति समाप्त कर एक रस में लीन हो जाना ही साधारणीकरण है। यही आनन्द का कारण है।

रसों के लक्षण एवं उदाहरण

श्रृंगार रस—जब सामाजिक के मन में संस्कार रूप से वर्त्तमान रति स्थायीभाव विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से रस की अवस्था तक पहुँच कर आनन्द प्रदान करने लगता है तो उसे श्रृंगार रस कहते हैं।

श्रृंगार का शाब्दिक अर्थ है 'कामोद्रेक की प्राप्ति'। इस अर्थ में जो रचना मानव-हृदय की मधुरतम भूख (काम) को उज्जीवित एवं परितृप्त करेगी वह श्रृंगार रस की रचना कही जायगी।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

कविराज विश्वनाथ के अनुसार—

श्रृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदा गमनहेतुकः।
उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृंगार इष्यते ॥

—साहित्यदर्पण

अर्थात् काम की उत्पत्ति का नाम श्रृंग है। उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृंगार कहलाता है।

श्रृंगार रस के आलम्बन नायक-नायिका हैं। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत नायक-नायिका के वस्त्र, चेष्टाएँ, उपवन, कविता, संगीत, चाँदनी और ऋतु आदि हैं।

प्रेमपूर्वक बातचीत, एक दूसरे पर कटाक्षपात, परस्पर मिलन, रोमांच, चुम्बन आदि अनुभाव के अन्तर्गत आते हैं।

संयोग-श्रृंगार के संचारी भाव आनन्दप्रद होते हैं एवं विप्रलंभ या वियोग-श्रृंगार के संचारी भाव दुःखजनक होते हैं।

संयोग रस—जहाँ नायक एवं नायिका एक दूसरे के निकट रहकर एक दूसरे के प्रति आर्कषित हों वहाँ संयोग श्रृंगार होता है। इसे संभोग श्रृंगार भी कहते हैं।

उदाहरण—१

किन्नरियों-सा रूप लिये मदिरा की बूँदें लाल,
टूट रहे कितने मेरे चुम्बन के तारे बाल।
उष्ण रक्त में थिरक रहीं तुम ज्वालागिरि-सी लीन,
लोलुप अंगों में लय होकर आज बनी मनमीन ॥

आश्रय—नायक। विषय या आलम्बन—चंचल नायिका। उद्दीपन—किन्नरियों-सा रूप। अनुभाव—चुम्बन। संचारीभाव—चपलता, आवेग। स्थायी भाव—रति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

उदाहरण २

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्हीं।
मनसा विजय विश्व कहँ कीन्हीं॥
अस कहि फेरि चितए तेहि ओरा।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥

आश्रय—राम। आलम्बन—सीता। उद्दीपन—कंकन किंकिणि। अनुभाव—सीता के प्रति कटाक्षपात। संचारीभाव—उत्सुकता, चपलता, हर्ष, मोह आदि।

विप्रलंभ शृङ्गार—नायक-नायिका में एक दूसरे के प्रति आकर्षण रहते हुए भी जब दूरी, समाजभय, किसी विशेष प्रतिज्ञा आदि के कारण मिलन सम्भव न हो तो वियोग शृंगार या विप्रलंभ शृंगार होता है।

उदाहरण—१

सखि हे हमर दुखक नहीं ओर,
ईभर बादर माह भादर सून मंदिर मोर।
झम्पि घन गरजति संतति भुवन बरसंतिया,
मत्त दादुर डाक डाहुक फाटि जाएत छतिया॥

नायिका—आश्रय। नायक—आलंबन। सूनाघर, भादों के गरजते-बरसते बादल, दादुर का शोर—उद्दीपन, दुःख-कथन—अनुभाव। प्रलाप, आशंका, छाती फटना—संचारी भाव। स्थायीभाव—रति।

उदाहरण—२

ए हो प्राण प्यारे बिन दरस तिहारे भये,
मुए हू पै आँखें ए खुली ही रह जायँगी।

—भारतेन्दु

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

नायिका – आश्रय। नायक—आलंबन। मिलन नहीं होना—उद्दीपन। चिन्ता का अनुभव—मानसिक अनुभाव। मरण, शंका आदि संचारी भाव। स्थायीभाव—रति।

हास्य रस—वाणी, रूप, चेष्टा आदि के विकारों को देखकर जब हास नामक स्थायीभाव विकसित हो रसास्वाद का कारण बने तो उसको हास्य रस कहते हैं। कविराज विश्वनाथ के अनुसार "वागादि-वैकृतैश्चेतो विकासो हास इष्यते"—(साहित्यदर्पण)। अर्थात् वाणी, रूप आदि के विकारों को देखकर चित्त का विकसित होना 'हास' कहा जाता है। हास्य-रस के विभाव आचार-विकृति, व्यवहार-विकृति, वेश-विकृति, नाम-विकृति, अर्थ-विकृति आदि हैं।

ओठ काटना, नाक-कपोल आदि को घुमाना, आँखें सिकोड़ना, हाथ-पैर को विकृत ढंग से चलाना आदि इसके अनुभाव हैं।

इसके संचारी भाव आलस्य, तन्द्रा, स्वप्न-प्रबोध, निन्दामिश्रित ईर्ष्या, (असूया) आदि हैं।

हास्य-रस श्रृंगार, वीर और अद्‌भुत-रस का पोषक है। भारतीयों के अनुसार इसका मूल कारण राग है और पाश्चात्यों के अनुसार द्वेष।

आश्रय के आधार पर इसके दो भेद हैं—आत्मस्थ और परस्थ। आत्मस्थ—जब कोई स्वयं हँसे और परस्थ—जब कोई दूसरों को हँसाये।

उदाहरण—१

कर मूसर नाचत नगन, लखि हलधर को स्वाँग।
हँसि-हँसि गोपी फिर हँसै, मनहुँ पिये सी भाँग॥

आश्रय—गोपी। आलम्बन—हलधर। उद्दीपन—नग्नता। अनुभाव—हाथ में मूसल लेकर नाचना। संचारी—निर्लज्जता, हर्ष, चपलता आदि।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

उदाहरण—२

विंध्य को वासी उदासी तपी व्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे,
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनिये मुनिवृन्द सुखारे।
ह्वैहैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे,
कीन्हीं भली रघुनायक जू, करुना करि कानन को पगु धारे॥

—कवितावली

आलंबन—रामचन्द्रजी। उद्दीपन—गौतम की पत्नी का शिला से पुनः चेतनामयी नारी के रूप में उद्धार। अनुभाव—कथा-श्रवण। संचारी भाव—हर्ष, नारी-अभाव-जन्य पीड़ा आदि।

करुण रस :—इच्छित वस्तु के नाश, अकल्पित दुःख का आगमन एवं संतापजन्य अन्य घटनाओं से जब शोक नामक स्थायीभाव की पुष्टि होती है तो करुण-रस होता है। कविराज विश्वनाथ के अनुसार 'इष्टनाशात् अनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।' अर्थात् इष्टनाश और अनिष्ट की प्राप्ति ही करुण-रस कहलाता है। करुण-रस के आलम्बन प्रियपात्र का विनाश अथवा चिरवियोग, पराजय एवं धनहानि आदि हैं।

इसका अनुभाव—रुदन, उच्छ्वास, छाती पीटना, मूर्च्छा, भूमि पर लोट-पोट करना आदि हैं।

इसके संचारी भाव के अन्तर्गत व्याधि, ग्लानि, मोह, दीनता, चिन्ता, उन्माद आदि हैं।

प्रिय पात्र के गुण, यश का कथन, स्मरण एवं उससे सम्बन्धित वस्तु के दर्शन उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं। इसका स्थायीभाव शोक है।

उदाहरण—१

भयउ विकल बरनत इतिहासा।
राम-रहित धिग् जीवन आसा॥
सो तनु राखि करब मैं काहा।
जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा॥

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

हा रघुनन्दन प्राणधि रीते।
तुम्ह बिन जियत वहुत दिने बीते॥
हा जानकी लखन हा रघुबर।
हा पितु हित चित चातक जलधर॥
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर विरह राउ गयउ सुरधाम॥

आश्रय—दशरथ। आलंबन—राम, लक्ष्मण, सीता। उद्दीपन—विगत स्मृतियाँ। अनुभाव—प्रलाप, उच्छ्वास। संचारी भाव—ग्लानि, स्मृति, दैन्य, उन्माद आदि।

उदाहरण—२

नृपकर सुरपुर गवन सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुःख पावा।
मरण हेतु निज नेहु विचारी। भे अति विकल धीर धुर धारी।

आश्रय—रघुनाथ। आलंवन—दशरथ। उद्दीपन—दशरथ की मृत्यु का समाचार। अनुभाव—अपने प्रति प्रेम का स्मरण। संचारी भाव—विकलता, स्मृति आदि। स्थायीभाव—शोक।

वीररस :—वीररस का स्थायीभाव उत्साह है। जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से उत्साह स्थायीभाव रसत्व की स्थिति प्राप्त करता है तो वीर रस होता है। इसके चार भेद हैं—युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर।

युद्धवीर के आलम्बन शत्रु, उद्दीपन शत्रु के पराक्रम, अनुभाव गर्व-सूचक उक्तियाँ, रोमांच आदि एवं संचारी धृति, स्मृति, गर्व, तर्क इत्यादि हैं। दानवीर के आलम्बन तीर्थ, दानपात्र, याचक आदि, उद्दीपन दान-पात्र द्वारा की गयी प्रशंसा, अनुभाव हर्ष एवं संचारी गर्व, मति आदि हैं। दयावीर के आलम्बन दया के पात्र, उद्दीपन दयापात्र की दीन दशा, अनुभाव दयापात्र से सांत्वना के वाक्य कहना और संचारी धृति, मति

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

आदि होते हैं। धर्मवीर के आलम्बन वेद-वचनों एवं ईश्वर पर विश्वास, उद्दीपन सदुपदेशों का श्रवण, अनुभाव उपदेशों पर चलना एवं संचारी भाव धृति, क्षमा आदि हैं।

उदाहरण—१

सनसन सनसना उठा है चक्र सुदर्शन फिर,
भरभर खप्पर चामुण्डा जीभ पसार रही।
डम-डम-डम डिमक रहा डमरू प्रलयंकर का,
हर-हर-हर-हर हर दिशा-दिशा हुँकार रही।
ऐसी चट्टान बना है, अपना हर जवान,
जो गोली लगती फूलों-सी झर जाती है।
भारत की धरती रण का बिगुल बजाती है।

—नीरज

आश्रय—भारतीय जवान, आलम्बन—शत्रु। उद्दीपन—सुदर्शन चक्र, चामुण्डा और प्रलयंकर की स्मृति। अनुभाव—गर्वोक्तियाँ। संचारी भाव—स्मृति, गर्व, धैर्य आदि। स्थायीभाव—उत्साह।

उदाहरण—२

कोपानल कर से उठा आज गाण्डीव
सत्त्व की नूतन परिभाषा में रखकर धीर
व्यूह व्यूहित हिम गिरि अभिमन्यु
सोच मत पार्थ, छोड़ दे तीर—
कृष्ण का स्वर है।

—तरुण

पार्थ के रूप में भारतीय सेना—आश्रय। शत्रु—आलम्बन। अभिमन्यु के रूप में हिमगिरि, एवं कृष्ण के रूप में कवि का स्वर—उद्दीपन। गाण्डीव उठाना—अनुभाव। गर्व, तर्क—संचारी भाव। उत्साह—स्थायीभाव।

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

रौद्र रस—विरोधी दल के द्वारा किया गया अपमान देश और धर्म का अपमान, प्रिय एवं श्रद्धेय व्यक्ति की निंदा, प्रिय वस्तु का नाश आदि से जब प्रतिशोध की भावना उमड़ती है तो रौद्र रस की अनुभूति होती है।

रौद्र रस का आलम्बन—विपक्षी दल या विपक्षी व्यक्ति। उद्दीपन—अपमानजनक उक्ति, अनिष्ट कार्य आदि। अनुभाव—विपक्षी दल के लोगों को ललकारना, भौहें चढ़ाना, आँखें लाल-लाल करना, होंठ चबाना, हथियार उठाना आदि। संचारी भाव—चंचलता, उद्वेग, मद, स्मृति, आवेग आदि। स्थायीभाव—क्रोध।

उदाहरण—१

अब लो मेरा उपहार; यही यमलोक तुम्हें पहुँचायेगा।
जीवन का सारा स्वाद तुम्हें बस इसी बार मिल जायेगा।
कह इस प्रकार राधेय अधर को दबा रौद्रता में भरके।
हुङ्कार उठा घातिका शक्ति विकराल शरासन पर धर के।

—दिनकर

यहाँ अर्जुन आलम्बन विभाव, उसकी गर्वोक्ति उद्दीपन विभाव, अधर दबाना, शरासन पर बाण धरना अनुभाव और उग्रता, आवेग आदि संचारी भाव हैं। क्रोध स्थायीभाव है।

उदाहरण—२

श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्षोभ से जलने लगे।
सब शीत अपना भूलकर करतल-युगल मलने लगे॥
संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े।
करते हुए यह घोषणा वे हो गये उठ कर खड़े॥

यहाँ श्रीकृष्ण के वचन उद्दीपन, अभिमन्युवध आलम्बन, अर्जुन का हाथ मलना, क्रोधयुक्त वचन आदि अनुभाव तथा गर्व, उग्रता आदि संचारी भाव हैं।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

भयानक रस—भयोत्पादक वस्तुओं को देखने या सुनने से अथवा शत्रु के विद्रोहपूर्ण आचरण से जब हृदयस्थ भय स्थायीभाव-परिपुष्ट होकर आस्वाद्य बनता है, तब वहाँ भयानक रस होता है। भयानक के आलम्बन हिंसक जीव, शत्रु, निर्जन प्रदेश, स्वयं किया गया अपराध इत्यादि हैं। शत्रु की चेष्टाएँ, असहायता उद्दीपन हैं तथा स्वेद, विवर्णता, कम्प, अश्रु, रोमांच इत्यादि अनुभाव हैं। त्रास, मोह, जुगुप्सा, दैन्य, संकट, अपस्मार, चिन्ता, आवेग इत्यादि उसके संचारी भाव हैं।

कुलपति के शब्दों में—

बाघ व्याल विकराल रण, सूनो वन गृह देख।
जे रावर अपराध पुनि, भय विभाव यह लेख॥
कम्प रोम प्रस्वेद पुनि, यह अनुभाव बखानि।
मोह मूरछा दीनता, यह संचारी जानि॥
इनते नृत्य कवित्त में, अतिभय परगट होय।
कवि सहृदयको मन गमन करै भयानक सोय॥

भयानक रस स्वनिष्ठ और परनिष्ठ दो प्रकार से आस्वाद्य होता है। जहाँ भय का आलम्बन स्वयं आश्रय होता है वहाँ स्वनिष्ठ भयानक रस होता है और आश्रय को छोड़ अन्य वस्तु जब भय का आलम्बन बनती है तो वहाँ परनिष्ठ भयानक रस होता है।

स्वनिष्ठ भयानक रस का उदाहरण :—

"कर्त्तव्य अपना इस समय होता न मुझको ज्ञात है।
कुरुराज चिन्ताग्रस्त मेरा जल रहा सब गात है।
अतएव मुझको अभय देकर आप रक्षित कीजिये।
या पार्थ प्रण करने विफल अन्यत्र जाने दीजिये।

जयद्रथ वध—मैथिलीशरण गुप्त

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

यहाँ जयद्रथ के हृदय में अभिमन्यु-वध-जन्य अपराध आलम्बन है, अर्जुन का प्रण उद्दीपन है, किंकर्त्तव्यविमूढ़ होना, चिन्तित होना, गात्र जलना अनुभाव है और त्रास संचारी भाव है। स्थायीभाव है—भय।

परनिष्ठ भयानक रस का उदाहरण :—

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ि धाई॥
जरइ नगर भा लोग बेहाला। झपट लपट बहुकोटि कराला॥
तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहिं उबारा॥

यहाँ हनुमान जी के द्वारा लंका-दहन हो रहा है। आलम्बन हैं लंका के लोग, उद्दीपन हनुमान का विराट रूप, उठती हुई लपटें। हाय हाय करना, वेहाल होना, अनुभाव और दुःख, आवेग, चिन्ता आदि संचारी भाव हैं।

बीभत्स-रस—घृणास्पद वस्तुओं के देखने या सुनने से घृणा स्थायीभाव-परिपुष्ट होकर रस-स्थिति तक पहुँचे तो बीभत्स रस होता है।

बीभत्स रस के आलम्बन घृणोत्पादक वस्तु और विचार हैं, उद्दीपन कुत्सित रंग-रूप, घृणात्मक क्रियायें आदि हैं, संचारी भाव ग्लानि, दैन्य, व्याधि, जड़ता चिन्ता आदि हैं।

उदाहरण—१

आँती के तार के मंगल कंगन हाथ में बाँध पिशाच की बाला।
कान में आँतन के झुमका पहिरे उर में हियरान की माला॥
लोहू के कीचड़ से उबटे सब अंग बनाये सरूप कराला।
पीतम के संग हार के गूदे की मद्य पिये खुपरीन के प्याला॥

यहाँ पिशाच की वाला का चित्र प्रस्तुत है। पिशाच की वाला आलम्बन विभाव है, आँत, लोहू माँस आदि से शृंगार उद्दीपन विभाव है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

प्रियतम के संग उसका मद्यपान अनुभाव है, मोह, उन्माद आदि संचारी भाव हैं।

उदाहरण—२

सड़े गले घावों से पिल्लू निकाल रहा,
सुड़क सुड़क नासिका का श्वेत द्रव सँभाल रहा,
चीख रहा है बीच रोड पर कुम्भीपाकी मनुज।

यहाँ कुम्भीपाकी मनुष्य आलम्बन, उसके सड़े-गले घाव उद्दीपन, चीखना अनुभाव और चिन्ता, व्याधि संचारी भाव हैं।

अद्भुत रस—जब किसी रचना में विस्मय स्थायीभाव इस प्रकार पूर्णतया प्रस्तुत हो कि सम्पूर्ण इन्द्रियाँ उससे अभिभावित होकर निश्चेष्ट वन जायँ, तव अद्भुत रस की निष्पत्ति होती है।

अद्भुत रस के आलम्बन—अलौकिकता से पूर्ण वाक्य एवं आचरण।

उद्दीपन विभाव—अलौकिक गुणों का कथन।

अनुभाव—आँखें फाड़ना, टकटकी लगाना, कम्पित होना, गद्गद वचन, उत्कण्ठित होना—आदि।

संचारी भाव—आवेग, हर्ष, भ्रान्ति, हर्ष, औत्सुक्य, चिन्ता, चपलता आदि।

उदाहरण—

अम्बर में कुन्तल जाल देख, पद के नीचे पाताल देख।
मुट्ठी में तीनों काल देख, मेरा स्वरूप विकराल देख॥
सब जन्म मुट्ठी से पाते हैं
फिर लौट मुट्ठी में आते हैं
× × ×
थी सभा सन्न सव लोग डरे चुप थे या थे बेहोश पड़े।

—दिनकर

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

दुर्योधन की सभा में कृष्ण ने अपना विराट रूप दिखाया। प्रस्तुत पंक्तियों में कृष्ण भगवान् आलम्बन हैं, उनके अद्भुत रूप एवं गुणों का कथन उद्दीपन है। सभा के लोगों का चुप्पी साधना, डरना अनुभाव एवं उनकी चिन्ता, चपलता संचारी भाव हैं।

शान्त रस—संसार की अनित्यता, वस्तु-जगत् की निस्सारता और परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान से जब वैराग्य का उत्कर्ष हो तो शान्त रस की प्रतीति होती है।

शान्त रस के आलम्बन हैं—संसार की अनित्यता, परमात्म-बोध।

उद्दीपन—पवित्र आश्रम, तीर्थ-स्थान, रम्य एकान्त वन तथा महापुरुषों का सत्संग।

अनुभाव—कातर होना, संसार-त्याग की तत्परता।

संचारी भाव—निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, उन्माद आदि।

स्थायीभाव—तत्वज्ञान से प्रेरित निर्वेद या शम।

उदाहरण—

तातल सैकत वारि बिन्दुसम।
सुत मित रमनि समाजे॥
तेहि बिसारि मन ताहि समरपिलु।
अब मुझ होब कोन काजे।
माधव हम परिणाम निरासा॥
तुहुँ जगतारण दीन दयामय।
अतर तोहर बिसवासा॥

प्रस्तुत भक्तिपद के आलम्बन जगत् की अनित्यता एवं परमात्म-बोध हैं।

उद्दीपन—संसार के क्षणिक सुख और ईश्वर की दयालुता।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

अनुभाव—कवि का कातर भाव और संसार-त्याग की तत्परता।

संचारी भाव—निर्वेद, स्मरण आदि।

वत्सल-रस—जब हृदय का स्थायीभाव स्नेह-विभावादि से परिपुष्ट होकर पुत्रादि के प्रति प्रकट हो तो वत्सल रस होता है।

वत्सल-रस का आलम्बन हैं—बालक, बालिका, पुत्रादि।

उद्दीपन—बालक की चेष्टायें।

अनुभाव—बालक को गोद में लेना, उछालना, प्यार से गले लगाना आदि।

संचारी भाव—आशंका, गर्व, आवेग, हर्ष आदि।

उदाहरण -

यशोदा हरि पालने झुलावे
हलरावे दुलराय मल्हावे जोइ सोइ कछु गावै ॥

यहाँ कृष्ण आलम्बन हैं, कृष्ण का शयन-शिथिल रूप उद्दीपन है, यशोदा का दुलराना, अस्फुट स्वर में गाना अनुभाव है और हर्ष, आवेग आदि संचारी भाव है।

रसों में परस्पर भेद

करुण रस और विप्रलंभ श्रृंगार—करुण रस का स्थायीभाव शोक है और विप्रलंभ का रति। विप्रलंभ श्रृंगार आशामय होता है और करुण निराशामय।

विप्रलंभ में दस कामदशायें होती है—अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृति। मृति के बाद करुण रस की स्थिति आ जाती है।

श्रृंगार रस में भी करुण रस का वर्णन प्रायः देखा जाता है। ऐसी अवस्था में भाव की प्रधानता वा अप्रधानता के आधार पर ही हम दोनों में विभेद स्थापित कर सकते हैं। जब वियोग में बिछुड़ते हुए प्रिय के

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

कष्ट का अनुमान कर चिन्ता व्यक्त होती है तब करुण रस होता है और जब अपने कष्ट का अनुमान कर चिन्ता व्यक्त होती है तो विप्रलंभ श्रृंगार होता है। यही कारण है कि राम-वन-गमन करुण काव्य है, उत्तररामचरितम् में विछुड़ती हुई सीता के प्रति राम विह्वल होते हैं, अतः वह भी करुण काव्य है।

करुण रस इष्टनाश या अनिष्ट-प्राप्ति से उत्पन्न होता है। विप्रलंभ श्रृंगार में पुनः संयोग की आशा वर्त्तमान रहती है। जब यह आशा पूर्णतया समाप्त हो जाती है तभी करुण रस होता है।

वत्सल रस और श्रृंगार रस—वत्सल-रस का स्थायीभाव वात्सल्य या पुत्रादि के प्रति स्नेह है एवं श्रृंगार रस का स्थायीभाव रति है। रति के अर्थ-विस्तार के कारण वहुत से विद्वानों ने वत्सल-रस को श्रृंगार में ही अन्तर्भुक्त किया है। ऐसे ही विद्वानों में कविराज विश्वनाथ ने रति की परिभाषा लिखते हुए बताया है—'रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्' अर्थात् मनोनुकूल वस्तु में मन के प्रेमपूर्ण उन्मुख होने को रति कहते हैं।

मनोनुकूल वस्तु की कोई सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती। मम्मट ने भी रति का अर्थ-विस्तार करके उसे देवादि विषयक रति, पुत्रादि विषयक रति और कान्ता-विषयक रति आदि नाम दिया है। इन लोगों ने वात्सल्य को पुत्रादि विषयक रति में ही परिगणित किया है।

लेकिन पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार स्त्री-पुरुष की एक दूसरे के विषय में प्रेम नामक जो चित्तवृत्ति होती है, उसे रति स्थायीभाव कहते हैं। आगे चलकर रति का यही संकुचित अर्थ साहित्य-शास्त्र में मान्य हुआ। इसीलिये वात्सल्य को भिन्न करके देखा गया और वत्सल रस नामक एक नये रस की सृष्टि हुई।

वीर रस और रौद्र रस—वीर रस का स्थायीभाव उत्साह है और रौद्र रस का क्रोध। दोनों के आलम्बन तथा उद्दीपन एक-से ही हैं। इसीलिये पहचानने में दिक्कत होती है। दोनों के स्थायीभावों की व्याख्या कर

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

देने से अन्तर बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। जब विरोधी व्यक्तियों के प्रति तीक्ष्णता का बोध होता है तब क्रोध होता है। कार्य के आरम्भ करने में स्थिरता और उत्कृष्ट आवेश उत्साह कहलाता है। क्रोध में पात्र का आनन्द समाप्त हो जाता है पर उत्साह में प्रफुल्लता बनी रहती है। क्रोध में पात्र अन्धा होकर कुछ भी करने को उतारू हो जाता है, पर उत्साह में लगातार उमंग से परिस्थितियों को समझते हुए उन पर विजय प्राप्त करने की लालसा होती है। क्रोध का सम्बन्ध वर्त्तमान से रहता है, पर उत्साह का सम्बन्ध प्रायः भविष्यत् से रहता है। इस प्रकार दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

भयानक रस और बीभत्स रस—भयानक रस का स्थायीभाव भय है और बीभत्स का जुगुप्सा। भय और जुगुप्सा में मौलिक अन्तर है। जब किसी वस्तु से हमें भय होता है तो सुरक्षा की भावना से हम दूर होते हैं। इसमें आत्मरक्षा की भावना होती है। जुगुप्सा में आत्मरक्षा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसमें दूरीकरण की भावना तो रहती है, पर वह इसलिये नहीं कि उससे हमें खतरा है, वरन् इसलिये कि वह वस्तु मन को भाती नहीं है। घृणा या जुगुप्सा होने पर हमें भय नहीं होता, उपेक्षा होती है। जैसे खूँखार शेर को देखकर हम डर जाते हैं, घबराने लगते हैं, पर किसी कोढ़ी को देखकर हम डरते नहीं हैं, उसके प्रति उपेक्षा का भाव उठता है। इसीलिये दोनों में मौलिक अन्तर है।

रस का आनन्द : आनन्द का रस

भावमूलक काव्य-सौन्दर्य से अभिभूत होकर हम रस की स्थिति में पहुँच जाते हैं। रस आनन्द रूप है। यह आनन्द सामान्य आनन्द से भिन्न प्रकार का होता है। प्राचीन आचार्यों ने रस की आनन्दरूपता पर काफी चिन्तन-मनन किया है। इन चिन्तकों के दो वर्ग हो सकते हैं—एक वह, जो रस को अलौकिक आनन्द का पर्याय मानते हैं। इन चिन्तकों में कविराज विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ का स्वर सबसे ऊँचा है। पण्डितराज

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

ने तो 'रसो वै सः', 'रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति' आदि श्रुति को प्रस्तुत करते हुए रस के आनन्द को अलौकिक सिद्ध किया है।

इन चिन्तकों का दूसरा वर्ग रस को सुख और दुख दोनों रूपों में देखता है—'सुखदुःखात्मको रसः'। ये चिन्तक शृङ्गार, वीर, अद्भुत और शान्त को तो आनन्दमयी चेतना का प्रतीक मानते हैं, पर करुण, भयानक, वीभत्स और रौद्र को दुःखस्वरूप मानते हैं। ऐसे चिन्तकों में रामचन्द्र गुणचन्द्र के अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी-साहित्य के प्रवल आलोचक पंडित रामचन्द्र शुक्ल का भी नाम लिया जा सकता है। शुक्ल जी ने 'रस-मीमांसा' में अपनी वात स्पष्ट करते हुए लिखा—'मेरी समझ में रसास्वाद का प्रकृत स्वरूप 'आनन्द' शब्द से व्यक्त नहीं होता। 'लोकोत्तर', 'अनिर्वचनीय' आदि विशेषणों से न तो उसके अवाचकत्व का परिहार होता है न प्रयोग का प्रायश्चित्त। क्या क्रोध, शोक, जुगुप्सा आदि आनन्द का रूप धारण करके ही श्रोता के हृदय में प्रकट होते हैं, अपने प्रकृत रूप का सर्वथा विसर्जन कर देते हैं, उसे कुछ भी लगा नहीं रहने देते? क्या 'विभावत्व' उनका स्वरूप हरकर उन्हें एक ही स्वरूप — सुख का — दे देता है। क्या दुःख के भेद सुख के भेद से प्रतीत होने लगते हैं? क्या मृतपुत्र के लिए विलाप करती हुई शैव्या से राजा हरिश्चन्द्र का कफन माँगना देखकर आँसू नहीं आ जाते, दाँत नहीं निकल पड़ते हैं। क्या महमूद के अत्याचारों का वर्णन पढ़कर यह जी में नहीं आता कि वह सामने आता तो उसे कच्चा खा जाते? क्या दुःखान्त कथा पढ़कर बहुत देर तक उसकी खिन्नता नहीं बनी रहती? 'चित्त का यह द्रुत होना' क्या आनन्दगत है? इस आनन्द शब्द ने काव्य के महत्त्व को वहुत कुछ कम कर दिया है—उसे नाच-तमाशे की तरह बना दिया है।''

—रस मीमांसा, पृ० १०१

जव करुण, रौद्र आदि रस दुःखमय हैं तो फिर ये प्रीतिकर क्यों होते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य शुक्ल ने चिन्तामणि में लिखा

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

है—"तात्पर्य यह है कि रस-दशा में अपनी पृथक् सत्ता का परिहार हो जाता है, अर्थात् काव्य में प्रस्तुत विषय को हम अपने व्यक्तित्व से सम्बद्ध रूप में नहीं देखते, अपनी योगक्षेम-वासना की उपाधि से ग्रस्त हृदय द्वारा ग्रहण नहीं करते, बल्कि निर्विशेष, शुद्ध और मुक्त हृदय द्वारा ग्रहण करते हैं। इसी को पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति में अहं का विसर्जन और निस्संगता (Impersonality and detachment) कहते हैं। इसी को चाहे रस का लोकोत्तरत्व या ब्रह्मानन्दसहोदरत्व कहिये, चाहे विभावन-व्यापार का अलौकिकत्व।"

—चिन्तामणि (प्रथम भाग), पृ० २४७

काव्य का आस्वाद यदि दुःखमय होता तो लोग काव्य को न तो कभी देखते और न पढ़ना पसन्द करते। वस्तुतः मनुष्य की अन्तिम सिद्धि सुख है न कि दुःख। हम काव्य का अध्ययन इसीलिये करते हैं कि हमारा पुरुषार्थ प्रेरित हो। दुःखमय स्थलों को देखकर हम क्षणभर को अपना दुःख भूल जाते हैं और पात्र के बलपौरुष से प्रेरित होकर आनन्द प्राप्त करते हैं। दुःख तो जीवन का सत्य है ही। हम उसे भोगते हैं, उससे लोहा लेते हैं। हमारा लक्ष्य दुःख प्राप्त करना कभी नहीं रहता। हम दुःखान्त दृश्यों से अपने हृदय का सामंजस्य अधिक पाते हैं। ऐसे स्थलों पर हम अहं को विस्मृत कर नूतन आशा का संचार कर पाते हैं। सत्य हरिश्चन्द्र को अपनी पत्नी शैव्या से भी जब हम कफन माँगते देखते हैं तो हमारे हृदय में सत्य के प्रति निष्ठा और हरिश्चन्द्र के प्रति श्रद्धा के भाव उठते हैं; जो दुःख के अनुकूल भावनाएँ नहीं हैं। यही कारण है कि हम ऐसे स्थलों पर आँसू बहाकर भी बराबर ऐसे दृश्य देखना पसन्द करते हैं।

काव्य का आनन्द हम किस रूप में ग्रहण करते हैं और यह किस कोटि का होता है इस पर प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० नगेन्द्र के विचार पठनीय हैं—"अतः काव्य की अनुभूति या आनन्द संवेदनरूप ही है, परन्तु ये

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

संवेदन स्थूल एवं प्रत्यक्ष न होकर सूक्ष्म और प्रतिविम्ब-रूप होते हैं। साधारण रूप में प्रत्यक्षता और तीव्रता की मात्रा से हम क्रमशः तीन प्रकार के संवेदनों की कल्पना कर सकते हैं—(१) एक तो शुद्ध प्राकृतिक संवेदन (ये एकान्त-प्रत्यक्ष तथा स्थूल होते हैं) जो, उदाहरण के लिए, हमें अपने प्रियजन के प्रत्यक्ष स्पर्श आदि से प्राप्त होते हैं। (२) दूसरे वे संवेदन जो उस स्पर्श के स्मरण से प्राप्त होते हैं। ये मानों पहले प्रकार के प्रतिविम्ब रूप हैं। स्वभावतः ही ये प्रत्यक्ष तथा स्थूल कम और आन्तरिक अथवा सूक्ष्म अधिक होते हैं। (३) तीसरे वे संवेदन जो इस स्मृति के विश्लेषण या बौद्धिक अध्ययन आदि से प्राप्त होते हैं। ये मानो प्रतिविम्ब के भी प्रतिविम्ब हैं और स्वभाव से ही अत्यंत आन्तरिक एवं सूक्ष्म होते हैं। वास्तव में, इनका स्थूल शारीरिक अंश प्रायः नष्ट ही हो जाता है। इन्हें हम बौद्धिक संवेदन कह सकते हैं। सभी प्रकार की बौद्धिक क्रियाओं में हमें इसी प्रकार के संवेदन प्राप्त होते हैं। प्रत्यक्ष जीवन में प्रायः ये ही तीन प्रकार के संवेदन हमारे अनुभव में आते हैं, परन्तु पिछले दो प्रकार के संवेदनों के बीच एक चौथे प्रकार के संवेदन भी होते हैं जो स्मृति के भावन से (क्रोचे के शब्दों में उसकी सहजानुभूति से, और साधारण व्यावहारिक शब्दावली में, उसको काव्य-रूप में उपस्थित या ग्रहण करने से) प्राप्त होते हैं। यह भावन का अनुभव न तो स्मृति का प्रत्यक्ष अनुभव होता है और न तो उसके विश्लेषण आदि का बौद्धिक अनुभव; स्मृति के अनुभव की अपेक्षा यह अधिक सूक्ष्म और बौद्धिक अनुभव की अपेक्षा अधिक स्थूल होता है और उसी अनुपात से इसके संवेदन भी एक की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और दूसरे की अपेक्षा स्थूल होते हैं। इस प्रकार काव्य से प्राप्त संवेदनों की स्थिति प्रत्यक्ष मानसिक संवेदनों से अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष एवं स्थूल ठहरती है। इसीलिए तो काव्यानुभूति में एक ओर ऐन्द्रिय अनुभूति की स्थूलता एवं तीव्रता (ऐन्द्रियता एवं कटुता) नहीं होती और दूसरी ओर बौद्धिक अनुभूति की अरूपता नहीं

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

होती; और, इसीलिए वह पहले से अधिक शुद्ध-परिष्कृत तथा दूसरी से अधिक सरस होती है।'
—रस सिद्धान्त, पृष्ठ १२०

इस सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों की चर्चा करना भी अपेक्षित है। अरस्तू ने विरेचन-सिद्धान्त का सहारा लेकर कहा है कि त्रासदी (Tragedy) में शोक, त्रास आदि का अतिरंजित रूप देखकर और उसका अनुभव कर प्रेक्षक अपने शोक, त्रास आदि की सूक्ष्म अभिव्यक्ति करता है। वाह्य उत्तेजना से उसके कटु मनोविकार सहसा उत्तेजित होकर अभिव्यक्त हो जाते हैं और इस प्रकार उनके दंश का निराकरण एवं उसके फलस्वरूप प्रेक्षक का मन विशद हो जाता है। यही अरस्तू का विरेचन-सिद्धान्त है।

रूसो के अनुसार दुःखान्त (Tragedy) में पाठक को एक प्रकार का द्वेषजन्य आनन्द प्राप्त होता है, जिसका आधार परपीड़न अथवा स्वपीड़न की सहज मनोवृत्ति है। हमको दूसरों के दुःख से प्रच्छन्न आनन्द मिलता है—यह मानव का पाशविक संस्कार है जिसके कारण रंग-मंच पर नायक-नायिका की विपत्ति का साक्षात्कार कर सामाजिक को बहुत कुछ वैसा ही आनन्द आता है जैसा बच्चे को तितली के पंख छेदने में।

निकेल के अनुसार दुःखान्त (Tragedy) के प्रसंगों का साक्षात्कार करने से हमारे मन में दुःख नहीं होता, वरन् एक उदात्त अनुभूति जन्म लेती है, जो निश्चय ही सुखद एवं प्रीतिकर होती है।

हिगेल ने इसे चेतना की भव्यतर समाहिति का आनन्द बताया है। आई० ए० रिचर्ड्स ने अन्तर्वृत्तियों के सामंजस्य को काव्य का उद्देश्य बताया है। उनका कहना है कि अन्तर्वृत्तियों के सामंजस्य से परितोष की प्राप्ति होती है इसीलिये Tragedy का प्रभाव दुःखकारक न होकर परितोषकारी होता है।

अन्त में हम डॉ० नगेन्द्र के निम्न उद्धरण को प्रस्तुत करते हुए इस विवेचन को समाप्त कर देना चाहेंगे—

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

"अनुभूति के आधार हैं संवेदन और अनुभूति में एक पृथक् संवेदन नहीं होता, संवेदनों का एक विधान होता है। जबसंवेदनों में सामंजस्य और अन्विति स्थापित हो जाती है तो हमारी अनुभूति प्रीतिकर होती है और जब ये विश्रृङ्खल तथा विकीर्ण होते हैं तो अनुभूति कटु होती है। काव्य से प्राप्त संवेदन प्रत्यक्ष न होकर बिम्बरूप होते हैं। एक तो इसी कारण उनकी कटुता अत्यन्त क्षीण हो जाती है, दूसरे वे कवि द्वारा "भावित" होते हैं। इसलिये अनिवार्यतः उनमें सामंजस्य स्थापित हो जाता है, क्योंकि काव्य के भावन का अर्थ ही अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित करना है और अव्यवस्था में व्यवस्था ही आनन्द है। इस प्रकार जीवन के कटु अनुभव भी काव्य में, अपने आधारभूत संवेदनों के समन्वित हो जाने से, आनन्द-प्रद बन जाते हैं।"—(रीति काव्य की भूमिका)। आज के अव्यवस्थित जीवनक्रम में तारतम्य एवं व्यवस्था लाने के लिये आज का काव्य नूतन छन्द-विधान एवं नवीन बिम्बों को ग्रहण करता है। ये नवीन छन्द हमारी संवेदना को कम मात्रा में नहीं उभारते। नूतन बिम्ब विधान के द्वारा हमारे नित्य की एकरसता एवं निराशा की अभिव्यक्ति का प्रयास ही नयी कविता का उद्देश्य है। यही कारण है कि यह बौद्धिक अधिक हो जाती है। आज के वैज्ञानिक-युग में मानव-हृदय पर भी मस्तिष्क का शासन हो गया है। फिर भी हृदय और मस्तिष्क में सन्तुलन लाकर कष्ट-पथ पर अजेय विश्वास के साथ प्रगति करने की प्रेरणा आज के काव्य से मिलती है। निराला की 'राम की शक्ति-पूजा', पंत का 'परिवर्त्तन' आदि कविताओं से हमारी संवेदना समन्वित होकर हमें आनन्द देती है।

अदोष रस : सदोष प्रक्रिया

रस की आनन्दरूपता ही उसके अदोष होने की साक्षी है। हमारी चेतना पर छा जानेवाला रस दुःखात्मक मनोवृत्तियों का शामक होता है; इसलिये भी यह अदोष है। फिर भी रचयिता की सदोष-प्रक्रिया के कारण कभी-कभी रस का प्रभाव विघटित हो जाता है और काव्यानन्द प्राप्त करने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

में बाधा होती है। साहित्यशास्त्रियों ने इस प्रक्रिया का निषेध करते हुए इसे दोष की संज्ञा दी है। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने इन दोषों का विवरण निम्न श्लोक में दिया है :—

> व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता।
> कष्टकल्पनया व्यक्तिरनुभावविभावयोः॥
> प्रतिकूल विभावादिग्रहो दीप्तिः पुनःपुनः।
> अकाण्डे प्रथनच्छेदौ, अंगस्याप्यतिविस्तृतिः॥
> अङ्गिनोऽननुसंधानं प्रकृतीनां विपर्ययः।
> अनङ्गस्याभिधानं च रसे दोषाः स्युरीदृशाः॥

अर्थात् वाचक शब्द द्वारा व्यभिचारि भावों, रसों अथवा स्थायीभावों का कथन, अनुभाव और विभाव की कष्ट-कल्पना से अभिव्यक्ति, प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण, पुनः पुनः दीप्ति, अनवसर में विस्तार, अचानक विच्छेद, अप्रधान रस का विशेष कथन और प्रधान रस की विस्मृति, पात्रों का विपर्यय, अनुपकारक रस का कथन, रस में रहनेवाले इस प्रकार के दोष होते हैं। इनमें सभी दोषों का निराकरण सम्भव है। यही कारण है कि इन दोषों के रहते हुए भी कभी-कभी सरस काव्य की उपेक्षा नहीं होती है।

(१) स्वशब्दवाच्यता—रस अथवा स्थायीभाव का वाचक के द्वारा कथन—

> सीता भी नाता तोड़ गयी,
> इस वृद्ध ससुर को छोड़ गयी।
> उर्मिला बहू की बड़ी बहन,
> किस भाँति करूँ मैं शोक सहन॥

—मैथिलीशरण गुप्त

यहाँ शोक स्थायीभाव का कथन अनुचित है।

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

(२) विभाव या अनुभाव की कष्ट-कल्पना—जहाँ विभाव या अनुभाव किस रस के हैं, यह कठिनाई से समझ में आता हो, वहाँ यही दोष होता है।

उठति गिरति फिर फिर उठति, उठि उठि गिरि गिरि जाति।
कहाँ करौं कासे कहौं क्यों जीवै यह राति॥

यहाँ यह सरलतापूर्वक पता नहीं चलता है कि ऐसा करनेवाला पात्र शोक में है या विरह में अथवा किसी वीमारी के कारण ऐसा कर रहा है।

(३) लक्षित रस के प्रतिकूल विभावादिका वर्णन—

इस पार प्रिये तुम हो मधु है।
उस पार न जाने क्या होगा॥

—वच्चन

यहाँ 'इस पार' जहाँ श्रृंगार का वोधक है वहीं 'उस पार' से शान्त रस की अनुभूति होती है।

(४) रस की वार-वार दीप्ति—रस-परिपाक हो जाने के वाद भी वार-वार उसी रस के वर्णन से नीरसता आ जाती है—

पंकज पाहनि पैजनियाँ, कटि घाँघरो, किंकिनियाँ जरवीली।
मोतिनहार हँमेल बलीन पै, सारी सुहावनी कंचुकी नीली॥
ठोड़ी पै श्यामल-बुँद अनूप, तरौनन की चुनियाँ चटकीली।
इंगुर की सुरखी दुरकी नथ, भाल के वाल पै वेन्दी छवीली॥

यहाँ वाला के सौन्दर्य के वर्णन में श्रृंगार की बार-वार दीप्ति हुई है।

(५) अनवसर में विस्तार—प्रसंग किसी अन्य रस का है और वर्णन किसी असम्बद्ध रस का हो तो यह दोष होता है।

(६) असमय में ही रस का विच्छेद—वर्ण्य रस की परिणति-काल में अचानक किसी अन्य रस की चर्चा कर देने से यह दोष आता है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

(७) अप्रधान रस का विशेष कथन और प्रधान रस की विस्मृति—प्रधान रस को छोड़ गौण के विशेष वर्णन में प्रस्तुत दोष होता है।

(८) अंगी की उपेक्षा—प्रधान पात्रों के रस एवं कथानक को भूलकर केवल प्रकृति के वर्णन में ही पुस्तक पूरी करना इस दोष का कारण है।

(९) प्रकृति अथवा पात्र का विपर्यय—पात्र के स्वभाव की जानकारी रखे बिना उसके वर्णन में यह दोष आता है।

(१०) अनुपकारक रस का कथन—जो रस कथानक या पात्र से चरित के किसी भी पहलू से सम्बन्धित नहीं हो और उसका वर्णन होता है तो प्रस्तुत दोष होता है।

इतने दोष तो रचना की प्रक्रिया में होते हैं। साथ ही साथ सहृदयों के पक्ष में भी कुछ दोष होते हैं जिनके कारण उन्हें रसास्वाद नहीं हो पाता है।

(१) प्रतीति में अयोग्यता।

(२) स्वगत भाव से देश-काल का आवेश।

(३) परगत भाव से देश-काल का आवेश।

(४) निज सुखादि का आवेश।

(५) उपायों की अक्षमता और परिणामस्वरूप प्रतीति की स्फुटता का अभाव।

(६) अप्रधानता।

(७) संशय योग।

———

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

अध्याय—३

पारिभाषिक टिप्पणियाँ

रसाभास—"रस-प्रक्रिया में अनैतिकता, अस्वाभाविकता, अव्यावहारिकता आदि का समावेश हो जाने पर या अपूर्णता रह जाने पर वाधित अथवा अपूर्ण रसानुभूति रसाभास कहलाती है।"

भावाभास—अनुचित स्थान में भाव की व्यंजना भावाभास कहलाती है।

हुमकि लात तकि कूबरि मारा।
परि मुँह भरि मँहि करत चिकारा॥

यहाँ आलम्वन विकलांग है। इसके साथ क्रोध-प्रदर्शन हास्यजनक है।

भाव-शान्ति—"जहाँ पहले से वर्तमान किसी भाव की शान्ति चमत्कारपूर्वक सहसा हो जाय वहाँ भाव-शान्ति की अवस्था मानी जाती है।

कितौं मनावत पीउ तउ मानत नाहिं रिसात।
अरुणचूड़धुनि सुनत ही तिय पिय हिय लपटात॥

प्रथम पंक्ति में नायिका मानिनी है। दूसरो पंक्ति में मुर्गे की आवाज सुनते ही उसका मान समाप्त हो जाता है और प्रातः होने की आशंका में वह प्रियतम के गले से लिपट जाती है।

भावोदय—"जहाँ एक भाव की शान्ति के बाद दूसरे भाव का उदय हो और उदय हुए भावों में ही चमत्कार का पर्यवसान हो, वहाँ

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

भावोदय होता है।"

तन मृगमद की बास तें समुझि अँधेरे माँह।
तियहिं लाग हिय हरषि कै, ब्रज रसिकन के नाँह॥

यहाँ प्रथम पंक्ति में विवोध का भावोदय दूसरी पंक्ति के हर्ष में हुआ है।

भावसन्धि—"जिनका उत्कर्ष परस्पर समान रूप से अवस्थित हो ऐसे ही दो भावों के बीच की स्थिति को भावसन्धि कहा जाता है।"

उत रणभेरी बजत इत रंग महल के रंग।
अभिमन्यु मन ठिठकिगो जस उतंग नभ चंग॥

रण-यात्रा के समय अभिमन्यु को एक साथ रणभेरी और रंगमहल की याद आना भावसन्धि है।

भावशवलता—"जहाँ एक के पश्चात् एक इस प्रकार शृङ्खला-वद्ध क्रम से अनेक भाव प्रकट हो जायँ अथवा अनेक भावों का एक साथ मिश्रण दिखाई दे वहाँ भावशबलता मानी जाती है।"

हरि संगति सुख मूल सखि, ये परपंथी, गाँउ।
तू कहि तो तजि संग उत दृग बचाय द्रुत जाँउ॥

यहाँ हर्ष, ईर्ष्या, उत्कंठा, वितर्क सभी भावों का समन्वय है।

ध्वनि—ध्वनि की परिभाषा देते हुए साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने लिखा है—"**वाच्यातिशायिनी-व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम्**" अर्थात् वाच्य में अतिशयता, उत्कर्षता प्रदान करनेवाले व्यंग्य को ध्वनि कहते हैं। काव्य में ध्वनि का महत्त्व इसीसे प्रकट हो जाता है कि ध्वनि को ही काव्य के प्राण माननेवालों का एक अलग सम्प्रदाय ही चला जिसे ध्वनि-सम्प्रदाय कहते हैं। ध्वनि-सम्प्रदाय के प्रमुख आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में इसके लक्षण वताते हुए लिखा है—"**चारुत्वोत्कर्ष-**

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

निबन्धना हि वाच्यव्यंग्ययोः प्राधान्यविवक्षा।" इस प्रकार वाच्य में सौन्दर्य-वृद्धि करनेवाले व्यंग्य को इन्होंने ध्वनि की संज्ञा दी।

ध्वनि-काव्य में शब्द के साक्षात् संकेतित अर्थ स्वयं साधन होकर किसी चमत्कारक अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं। आधुनिक प्रयोगवाद की कविता में हम ध्वनि के पर्याप्त उदाहरण पाते हैं। उदाहरण के लिए :—

यह बरसाती रात!
घोर घन गर्जन!
तड़ित द्युति!
थड़थड़ाते पात,
भय से सिहर उठते शाल!
पीलिया से ग्रस्त रोगी सा टिमकता लैम्प
अधमुँदी, अधखुली आँखों की राह
आते तुम,
झील की हर लहर से जन्म होता है
हजारों सूर्य का,
इन्द्रधनुषी रंग पत्तों पर बिखर जाता
और हलका ताप!
मैं आश्वस्त हूँ!

—महेन्द्र

पृष्ठभूमि में बरसाती रात, घन-गर्जन, तड़ित द्युति, थड़थड़ाते पत्ते, सिहरते शालवृक्ष, टिमकता लैम्प, इन सबसे किसी प्रलयकारी वातावरण में पलते हुए व्यक्ति की निराशा ध्वनित होती है। सूर्य का जन्म, इन्द्रधनुषी रंग आदि इसी निराशा के मध्य आशा को ध्वनित करते हैं।

ध्वनि के प्रमुख दो भेदों—लक्षणामूलक और अभिधामूलक—में एक्यावन भेदों का कथन किया गया है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

गुण :—रस के उत्कर्षक धर्म को गुण कहा गया है। रस के साथ-साथ गुणों की विशेषता पर भी काफी प्रकाश डाला गया है। रस को प्रकाशित करने के साथ-साथ शब्द, अर्थ के धर्म के रूप में भी गुणों का नाम लिया जाता है। वर्णसंघटन, शब्दयोजना, शब्द-चमत्कार, शब्द-प्रभाव और अर्थ की दीप्ति पर आश्रित रहने वाले धर्म गुण हैं। गुणों की संख्या तीन मानी गई है—ओज, प्रसाद और माधुर्य।

ओज :—श्रोता या पाठक के मन में जिस काव्य के श्रवण या अध्ययन से आवेश, उत्साह, वीरता आदि के भाव उठें वह काव्य ओज-गुणसम्पन्न माना जाता है। ओज में उदात्त भाव एवं कर्कश और संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है। दीर्घ समास, उद्धत पद-संघटना, ट, ठ, ढ, श, ष आदि वर्णों की वहुलता इस गुण में होती है।

प्रसाद :—काव्य के जिस गुण में सहजग्राह्यता, सरलता आदि हो उसे प्रसाद गुण कहते हैं। अर्थ की निर्मलता और स्वच्छता इसकी विशेषता है। यह पाठक के चित्त में तुरन्त ही व्याप्त हो जाता है। यह गुण प्रायः सभी रसों में प्रयुक्त होता है। काव्य-निर्णय में दास ने इसकी परिभाषा बताई है :—

मन रोचक अच्छर परें सोहै सिथिल सरीर।
गुण प्रसाद जल सूक्ति ज्यों प्रगटै अरथ गंभीर॥

माधुर्य :—जिस गुण में "श्रुति-सुखदता, समासहीनता, उक्ति-वैचित्र्य, आर्द्रता, चित्त को द्रवित करने की विशेषता, भावमयता और आह्लादता" हो उसे माधुर्य गुण कहते हैं। माधुर्य गुण में ट, ठ, ड, ढ वर्णों का प्रयोग वर्जित है।

रीति :—"विशिष्टपदरचना रीतिः" अर्थात् विशिष्ट प्रकार से पदों की रचना को ही रीति कहते हैं। काव्य-पुरुष की कल्पना से हम इसे समझ सकते हैं। काव्य-पुरुष की आत्मा रस है और शरीर है शब्दार्थ

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

रीति उसके शारीरिक अंग हैं। पदों के विशिष्ट प्रकार के संगठन से आत्मभूत रस प्रभावकारी रूप से अभिव्यक्त होता है। पदों का यही संगठन रीति है। इसीको काव्य की आत्मा भी माना गया है—'रीतिरात्मा काव्यस्य।' पर यह सिद्धान्त मान्य नहीं हुआ। कोलेरिज के 'The best words in the best order' अर्थात् 'उत्तमोत्तम शब्दों की उत्तम रचना काव्य है', वाले सिद्धान्त में रीति के सिद्धान्त की ही झलक मिलती है। यूँ तो रीति के अनेक भेद हैं, पर रामदहिन मिश्र ने तीन भेदों की चर्चा की है—वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली।

माधुर्य व्यंजक वर्णों की ललित रचना को वैदर्भी, ओजप्रकाशक वर्णों से आडम्वरपूर्ण बन्ध को गौड़ी और इन दोनों के अतिरिक्त अन्य वर्णों के द्वारा माधुर्य एवं सुकुमारतापरक भावों को उत्पन्न करने वाली रचना को पाँचाली रीति कहते हैं। इन तीनों के अतिरिक्त लाटी, पंचालिका, मागधी, मैथिली और वाच्छोमी रीतियों की चर्चा भी अन्यत्र की गयी है।

अध्याय—४

अलंकार

अलंकार का सामान्य अर्थ आभूषण है जिसे हम शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि के लिये पहनते हैं। काव्य-चर्चा के क्रम में अलंकार का अर्थ सौन्दर्य में वृद्धि करने वाला ही है, पर यह सौन्दर्य काव्य-सौन्दर्य है।

काव्य-सौन्दर्य हो अथवा बाह्य सौन्दर्य, उसके साक्षात्कार से अथवा उसकी अनुभूति से चामत्कारिक रूप से हमें रस का अनुभव होता है। हम

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

आत्मलय अथवा आत्मानुभूति की तरंगों में डूबने-उतराने लगते हैं। यही सच्चा आनन्द है; यही काव्य का लक्ष्य है ; अलंकारों की उपादेयता काव्य में इसीलिये सिद्ध है।

रस काव्य के प्राण हैं, रस का स्थायी धर्म उसकी आनन्दरूपता है। इस आनन्द को शब्द और अर्थ के सौन्दर्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दी जाती है। अतः सौन्दर्यरूप अलंकार (सौन्दर्य-अलंकार) शब्दार्थ में ही निहित रहता है; लेकिन इसका उद्देश्य काव्य के अंतरंग रस की प्रतीति द्वारा सौन्दर्यानुभूति करवाना है। अलंकार के इसी महत्व को दृष्टि में रखते हुए काव्यादर्शकार दण्डी ने इसका लक्षण बताया—'काव्य शोभा-करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते' अर्थात् काव्य के शोभाकर धर्म को अलंकार कहते हैं। वामनाचार्य ने गुणों को काव्य के शोभाकर धर्म बताते हुए अलंकारों को काव्यशोभा का उत्कर्षक बताया। इनके अनुसार—'काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः तदतिशयहेतवस्त्वलङ्कारः।' रुद्रट के अनुसार कहने की विशिष्ट शैली को ही अलंकार कहते हैं—'अभिधानप्रकारविशेषा एव चालंकाराः।' आनन्दवर्धनाचार्य के अनुसार वाणी की अनन्त शैलियाँ ही अलंकार हैं—'अनन्ता हि वाग्विकल्पाः। तत्प्रकारा एव चालंकाराः'। कविराज विश्वनाथ के अनुसार शब्द और अर्थ के सोन्दर्य को अतिशय करनेवाले—बढ़ानेवाले अस्थिर धर्म ही अलंकार हैं—"शब्दार्थयो-रस्थिरा ये धर्माः शोभातिशालिनः"।

हिन्दी के आचार्यों ने भी अलंकारों का लक्षण-निरूपण संस्कृत के आचार्यों की ही भाँति किया। अलंकारों के महत्व को बताते हुए आचार्य केशव ने कहा है—

यदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सुरस सुचित्त।
भूषण बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त॥

पद्माकर ने जगद्विनोद में इसका लक्षण इस प्रकार निरूपित किया है—

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

शब्दहुँ ते कहुँ अर्थ ते कहुँ दुहु ते उर आनि।
अभिप्राय जिहि भाँति जँह अलंकार सो मानि॥

आधुनिक हिन्दी-साहित्य के वरेण्य आलोचक श्री रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि काव्य की आत्मा रस के उत्कर्ष में सहायक होनेवाले शब्द और अर्थ के सौन्दर्यमूलक धर्म ही अलंकार हैं। इन्हें कोई-कोई आवश्यक मानते हैं और कोई अनावश्यक। पर यह तत्वतः कहा जा सकता है कि इनके शुद्ध प्रयोग से काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि ही होती है। हाँ, काव्य में सौन्दर्य पहले से रहना आवश्यक है; रस की स्थिति अनिवार्य है। रसहीन काव्य में अलंकारों की भरमार से रस की सृष्टि ठीक उसी प्रकार नहीं हो सकती जिस प्रकार असुन्दर रमणी आभूषण धारण कर अपना सौन्दर्य वढ़ा नहीं सकती।

सौन्दर्य की सीमा नहीं होती। हृदय पर स्थायी प्रभाव के लिये अनेक उपमाओं और कहने के अनेक प्रकारों के माध्यम से सौन्दर्य की अभि-व्यक्ति होती है। वह महासत्य, जो शिव तो है ही, सुन्दर भी है यद्यपि विवेचना की वस्तु नहीं है। पर प्रकृति के जिस अणु-अणु में उसकी गन्ध फैली है, जिसकी महासत्ता का प्रत्येक भ्रूविक्षेप उसके सौन्दर्य को प्रकट करता है वह भी उपमादि अलंकारों से ही अभिव्यक्त होता है। कहने का तात्पर्य है कि जो वाणी हमारे हृदयोद्‌गारों को प्रकट करने का माध्यम है उसी वाणी के सौन्दर्य को वढ़ाकर हमारे उद्‌गारों को आकर्षक और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये अलंकारों की ही आवश्यकता होती है। ये अनायास ही वाणी के साथ हो जाते हैं, पर सायास प्रयोग भी कभी-कभी सुन्दर वन पड़ता है; यद्यपि इस प्रकार का प्रयोग प्रायः कथन को दुरूह वनाकर उसे प्रभावहीन वनाता है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

काव्य में अलंकारों की स्थिति के विषय में अनेक मत हैं। कोई इसे रस का उपकारक मानते हैं, कोई केवल शब्दार्थ का ही धर्म समझते हैं। कोई इसे स्थायी मानते हैं, कोई अस्थायी। पर यह तो कहा ही जा सकता है कि काव्य में रस, ध्वनि, रीति और गुण के बाद ही अलंकार का स्थान आता है। पर इससे काव्य और अलंकार का सम्वन्ध टूटता नहीं है। विम्वविधान काव्य के लिये परमावश्यक है। प्रतीक-योजना के विना कथन में चमत्कार नहीं आ सकता। बिम्ब-विधान और प्रतीक-योजना से भिन्न करके हम अलंकारों को नहीं देखते। इस प्रकार काव्य के ये अनिवार्य एवं अविच्छिन्न अंग हैं। पाश्चात्य विद्वान क्रोचे के शब्दों में हम कहना चाहेंगे :—

'But a Constituent element of expression, indistinguishable from the whole.'

शब्दार्थ के साथ स्थायीरूप से रहने के कारण अलंकार शब्दगत और अर्थगत तो होते ही हैं, कभी-कभी शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित रहते हैं। इसी आश्रयभूतता के आधार पर अलंकार के तीन भेद किये गये हैं—शब्दालंकार, अर्थालंकार और उपमालंकार।

शब्दालंकार—शब्दों के सौन्दर्य-विधायक अलंकारों को शब्दालंकार कहते हैं। शब्दों के साथ ही इन अलंकारों की स्थिति रहती है। शब्दान्तर या शब्द-परिवर्त्तन से ये अलंकार विनष्ट हो जाते हैं। जैसे—**तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये'**—यहाँ अलंकार शब्दों की ध्वनि पर आश्रित है। 'त' के कई बार उच्चारण से जो एक ध्वनि-सौन्दर्य है, वह हमें आकर्षित करता है। पर उसी अर्थ के भिन्न शब्द देने पर अलंकार समाप्त हो जायगा, सौन्दर्य विनष्ट हो जायेगा जैसे—'सूर्य-पुत्री के किनारे तमाल के वहु पेड़ छाये।' यहाँ ऊपर की पंक्ति का सौन्दर्य कहाँ है ? स्पष्ट है शब्द-परिवर्त्तन से शब्दालंकार विनष्ट हो जाते हैं।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

अर्थालंकार—ये अलंकार अर्थाश्रित होकर अर्थों के अभिव्यक्तिमूलक सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। शब्द के परिवर्त्तन से ये समाप्त नहीं होते; अर्थात् उसी अर्थ का अन्य शब्द दे देने से भी इनकी स्थिति ज्यों की त्यों रहती है। जैसे—

जान पड़ता नेत्र देख बड़े-बड़े।
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े॥

यहाँ नेत्र की उपमा हीरे में जड़े गोल नीलम से दी गई है। सफेद कोओं के मध्य नीली पुतलियाँ देखकर हीरे में जड़े नीलम का ही बोध होता है। यही बिम्बविधान इसके अभिव्यक्तिमूलक सौन्दर्य का कारण है। यहाँ 'नेत्र' की जगह 'नयन' कर देने से भी अलंकार समाप्त नहीं होगा। कथन के सौन्दर्य में कोई कमी नहीं आने पाती। अतः अर्थालंकार अर्थों पर ही आश्रित हैं, शब्दों पर नहीं।

उपमालंकार—शब्द और अर्थ दोनों पर जिस कथन का सौन्दर्य निर्भर करता हो उसे उपमालंकार कहते हैं। शब्द या अर्थ इनमें से किसी की भी अनुपस्थिति से इस अलंकार का अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

आचार्य रुय्यक ने अलंकारों का निम्नलिखित वर्गीकरण उपस्थित किया है—सादृश्यगर्भ, विरोधमूलक, शृंखलामूलक, न्यायमूलक, गूढार्थ-प्रतीतिमूलक।

१. सादृश्यगर्भ—सादृश्य या सहधर्मिता के आधार पर जितने अलंकार हैं वे सब सादृश्यगर्भ के अन्तर्गत है। सादृश्य तीन प्रकार से संभव है—भेदप्रधान, भेदाभेदतुल्यप्रधान और अभेदप्रधान।

इनके अन्तर्गत निम्नलिखित अलंकार आते हैं :—

भेदप्रधान—तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशंसा, पर्यायोक्ति, अर्थान्तरन्यास, व्याजस्तुति, आक्षेप।

भेदाभेदतुल्यप्रधान—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय और स्मरण।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

अभेद प्रधान—रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्ति, उल्लेख, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति।

२. विरोधमूलक अलंकार—विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, अतिशयोक्ति, असंगति और विषम।

३. शृङ्खलामूलक—कारणमाला, एकावली, मालादीपक और सार।

४. न्यायमूलक—काव्यलिंग, अनुमान, यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, अर्थापत्ति, विकल्प, परिसंख्या, समुच्चय, समाधि, प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण और उत्तर।

५. गूढ़ार्थप्रतीतिमूलक अलंकार—सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति।

अलंकार के वर्गीकरण अनेक आचार्यों ने किये हैं। संस्कृत और हिन्दी दोनों के आचार्यों ने अनेक प्रकार से अपने वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं, पर विजयेन्द्र स्नातक ने हिन्दी साहित्य कोश के प्रथम भाग में कहा है—"वर्गीकरणों की इस अनेकता में आचार्य रुय्यक का वर्गीकरण अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक है, क्योंकि उनका वर्गीकरण अलंकारों के मूल तत्वों के आधार पर अवलम्बित होने के कारण अधिक स्पष्ट और उपयुक्त है।"

आचार्य रुय्यक के उपर्युक्त वर्गीकरण को प्रायः सभी विद्वानों का समर्थन मिला है।

शब्दालंकार

शब्दालंकार में सौन्दर्य शब्दों की ध्वनि (Sound) पर निर्भर करता है। यह ध्वनि तीन प्रकार की है—वर्णध्वनि, पदध्वनि और वाक्यध्वनि।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

वर्णध्वनि—अर्थात् वर्णों की ध्वनि के सौन्दर्य पर जो अलंकार निर्भर करे उस अलंकार को अनुप्रास कहा जाता है। पदों की सामूहिक ध्वनि पर निर्भर करनेवाले अलंकारों में—यमक, वक्रोक्ति, श्लेष और पुनरुक्तवदाभास है। वाक्य-ध्वनि में लाटानुप्रास का नाम लिया जा सकता है।

ध्वनिसौन्दर्य के कारण ही कविता में लयात्मकता, अर्थप्रसाद एवं ऐसे अनेक परोक्ष संकेत मिल जाते हैं जिन्हें हम शब्दों के द्वारा नहीं कह सकते। शब्दालंकार ध्वनि के गठन पर आश्रित हैं इसीलिये इनका महत्त्व काव्य में बहुत अधिक है।

अनुप्रास

वर्णसाम्यमनुप्रासः—अर्थात् वर्णों की समता ही अनुप्रास है—मम्मट। कहने का अर्थ है कि एक या अनेक वर्णों की एक या अधिक बार आवृत्ति से जो ध्वनि-सौन्दर्य प्रकट होता है उसे अनुप्रास कहते हैं। जैसे—

> कूरम पै कोल कोल हू पै शेष कुंडली है।
> कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की॥

यहाँ 'क' और 'फ' वर्णों की एकाधिक आवृत्ति से जो ध्वनि में सौन्दर्य आ गया है वही अनुप्रास है। अनुप्रास के पाँच भेद हैं :—छेकानुप्रास, वृत्त्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अन्त्यानुप्रास।

छेकानुप्रास—स्वरूप एवं क्रम दोनों दृष्टियों से अनेक व्यंजनों की एक वार आवृत्ति छेकानुप्रास है।

> कोमल कमल सम, गुलाबन के दल सम

'कोमल कमल' में क-म-ल व्यंजन की एक वार आवृत्ति हुई है।

वृत्त्यनुप्रास—एक व्यंजन की एक बार या अनेक वार, अनेक व्यंजनों की एक बार या अनेक बार स्वरूपतः अथवा क्रमतः आवृत्ति को वृत्त्यनुप्रास कहते हैं।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेशहुँ जाहि निरंतर गावै ।

इसमें 'स' की अनेक बार आवृत्ति है ।

श्रुत्यनुप्रास—एक ही उच्चारण स्थान से उच्चरित एक से वर्णों की आवृत्ति से उत्पन्न ध्वनि-सौन्दर्य को श्रुत्यनुप्रास कहते हैं ।

झांक न झंझा के झोंके में
झुककर खुले झरोखे से ।

यहाँ 'झ' वर्ण की समानता से उत्पन्न ध्वनिसौन्दर्य श्रुतिमधुर है ।

लाटानुप्रास—शब्द एवं अर्थ की आवृत्ति होने के बाद भी तात्पर्य मात्र की भिन्नता हो तो लाटानुप्रास होता है—

'शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः'

—मम्मट

पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी आहि ।
पीय निकट जाके, नहीं घाम चाँदनी आहि ।

अन्वय की भिन्नता से तात्पर्य की भी भिन्नता हो जाती है ।

अन्त्यानुप्रास—कविता के पद अथवा चरण के अन्त में जब ध्वनि साम्य हो, तुक मिला हो तो अन्त्यानुप्रास होता है ।

बढ़कर विपत्तियों पर छा जा, मेरे किशोर ! मेरे ताजा !
जीवन का रस छन जाने दे, तन को पत्थर बन जाने दे !
तू स्वयं तेज भयकारी है,
क्या कर सकती चिनगारी है ।

इसमें पादान्त और चरणान्त दोनों में ध्वनिसाम्य है ।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

श्लेष

एक शब्द से अनेक अर्थों की प्रतीति श्लेष अलंकार होता है।

कविराज विश्वनाथ के अनुसार--श्लिष्टैः पदैः अनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते। श्लिष्ट शब्दों से अनेक अर्थ के कथन को श्लेष कहते हैं। श्लेष जब शब्द पर आश्रित होता है तो शब्दालंकार और अर्थ पर आश्रित रहता है तो अर्थालंकार के अन्तर्गत आता है।

जहाँ शब्द का बिना भंग किये ही अनेक अर्थ निकल जाते हैं वहाँ अभंग श्लेष और जहाँ शब्द को टुकड़े-टुकड़े कर अनेक अर्थ निकलते हैं वहाँ सभंग श्लेष होता है।

जो पहाड़ को तोड़ फोड़कर बाहर कढ़ता।
निर्मल जीवन वही सदा जो आगे बढ़ता॥

यहाँ 'जीवन' श्लिष्ट शब्द है जिसके दो अर्थ प्रतीत होते हैं--जल और मानव-जीवन। मानव-जीवन के अर्थ में पहाड़ कठिनाइयों का प्रतीक बन जाता है। अर्थात्, पहाड़ सी कठिनाइयों को तोड़-फोड़कर जो आगे बढ़ता है वही सच्चा जीवन है। जल के अर्थ में पहाड़ को तोड़कर बाहर निकलने वाला जल जब आगे बढ़ता रहता है तो निर्मल बनता रहता है। यह अभंग श्लेष है।

'को घटि ये वृषभानुजा ये हलधर के वीर'

यहाँ वृषभ + अनुजा अर्थात् गाय, वृषभानु + जा अर्थात् राधा—इस प्रकार दोनों अर्थों की सिद्धि होती है। यह सभंग श्लेष है, क्योंकि इसे तोड़-फोड़कर अर्थ निकाला गया है।

यमक

'अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुति'

—मम्मट

४

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

अर्थात् अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णों की उसी क्रम से पुनः आवृत्ति या श्रवण यमक अलंकार है। सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने इस परिभाषा को मान्यता प्रदान करते हुए पुनः कहा—'निरर्थक वर्णों की अथवा भिन्न-भिन्न अर्थवाले सार्थक वर्णों की क्रमशः आवृत्ति या उसके पुनः श्रवण को यमक कहते हैं'।

नयन भर न देखा कि आये नयन भर।

यहाँ 'नयन भर' देखना और 'नयन भर' आना में वर्णों की आवृत्ति है पर अर्थ की भिन्नता है। इसलिये यहाँ यमक है।

वक्रोक्ति

श्लेष या कंठध्वनि के कारण वक्ता द्वारा कहे हुए वाक्य का यदि श्रोता अन्य अर्थ लगावे तो वक्रोक्ति अलंकार होता है। इस अलंकार में वक्ता और श्रोता दोनों की स्थिति अनिवार्य है।

जहाँ श्लेष के कारण—अनेक अर्थवाच्यत्व होने के कारण—किसी विशेष शव्द का श्रोता अपने मनोनुकूल अर्थ लगाता है वहाँ श्लेष वक्रोक्ति और कथन की किसी विशेष भंगिमा के कारण श्रोता जव अपने मनोनुकूल अर्थ लगावे तो काकु वक्रोक्ति होती है।

श्लेष वक्रोक्ति—

खोलो जू किवार! तू को एतीवार।
हरि नाम है हमार! बसो कानन पहाड़ में॥

कृष्ण राधिका का द्वार खटखटा रहे हैं। राधा पूछती है 'तुम इस समय कौन हो।' श्रीकृष्ण अपना परिचय देते हुए कहते हैं–'मेरा नाम हरि है।' हरि शव्द का एक अर्थ बन्दर भी है। राधा श्लेष के आधार पर उसी अर्थ को ग्रहण करते हुए कहती है—'बन्दर हो तो जंगल और पहाड़ों में वास करो। यहाँ तुम्हारा क्या काम है।'

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

काकु वक्रोक्ति—

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।
तुमहिं उचित तय मों कँह भोगू ॥

वनगमन के समय राम द्वारा यह कहे जाने पर कि तुम अभी सुकुमारी हो; वन मत जाओ। सीता कंठध्वनि की विशेष भंगिमा से अपने मन की बात कहती है—मैं सुकुमारी हूँ। और आप वन जाने योग्य हैं, आपके लिये तप उचित है और मेरे लिये क्या भोग उचित है? अर्थात् सीता यदि सुकुमारी हैं तो राम भी वन जाने योग्य नहीं हैं, राम के लिये यदि तप करना उचित है तो सीता के लिये भी भोग उचित नहीं है। कंठध्वनि की विशेषता के कारण राम पर सीता का भाव स्पष्ट हो जाता है। अतः काकु वक्रोक्ति है।

पुनरुक्तवदाभास

पुनरुक्तवदाभास (पुनः उक्तवत् आभास) का शब्दिक अर्थ है पुनरुक्तिका आभास होना। साहित्यदर्पणकार ने इसका लक्षण वताते हुए लिखा है—

आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्यावभासनम्।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः ॥

अर्थात् भिन्न आकारवाले शव्दों के अर्थ में आपाततः (सहसा) पुनरुक्ति की प्रतीति को पुनरुक्तवदाभास अलंकार कहते हैं। इसमें पुनरुक्ति वस्तुतः रहती नहीं है, पर ऐसा आभास होता है कि पुनरुक्ति है।

शिवशंकर भव भय हर मेरे

यहाँ 'शिवशंकर मेरे सांसारिक भीति को हरण करें यह अर्थ है; पर शिवशंकर हर, भव, आदि शिव के ही पर्याबवाची होने के कारण पुनरुक्ति का आभास होता है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

पुनरुक्ति

भाव को रुचिकर बनाने के लिये एक ही शब्द को बार बार कहना पुनरुक्ति है।

तपरे विधुर विधुर मन।

यहाँ 'विधुर' शब्द की पुनरुक्ति से माधुर्य आ गया है।

अर्थालंकार

कथन का सौन्दर्य केवल शब्द के चमत्कार पर ही आश्रित नहीं रहता, वह अर्थ के चमत्कार पर भी आश्रित रहता है। शब्दाश्रित सौन्दर्य के प्रयोक्ता एवं पाठक दोनों के लिये शब्द की ध्वनियों से परिचित होना आवश्यक है। इसके बिना हम उस सौन्दर्य का आस्वाद नहीं कर सकते।

अर्थालंकार के लिये अर्थ की जानकारी तो आवश्यक है ही, साथ ही वस्तुओं के रूप और प्रभाव से भी परिचित होना आवश्यक है। एक छोटा-सा बच्चा भी यह कह सकता है कि 'उसकी आँखें बिल्ली की तरह हैं।' इसका अर्थ है कि वह उसकी आँख और बिल्ली की आँखों के रूप से परिचित है। इसी प्रकार प्रभाव की जानकारी भी जरूरी है। बुखार में पड़े हुए किसी व्यक्ति की देह छूकर हम कहते हैं—"देह तवे की तरह जल रही है।" तवे के जलने के प्रभाव से परिचित हुए बिना हम इस कथन का मर्म नहीं समझ सकते। अतः रूपसाम्य और प्रभावसाम्य की जानकारी अर्थालंकार के सौन्दर्यपान के लिये आवश्यक है।

आधुनिक प्रयोगवादी कविताओं में प्रभावसाम्य की झाँकी मिल सकती है। सूक्ष्म प्रभाव की स्थूल झाँकी और स्थूल प्रभाव की सूक्ष्म झाँकी भी चमत्कारिक होती है। अर्थालंकार के कारण ही हमारी मनोभावनाएँ अधिक से अधिक मात्रा में व्यक्त हो सकती हैं। यदि हम किसी के सौन्दर्य

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

को व्यक्त करना चाहते हैं और कहते हैं कि 'वह सुन्दर है' तो लगता है हमारे मन को सन्तोष नहीं हुआ। हम आसपास की सुन्दर वस्तुओं को देखकर मन ही मन रूपसाम्य और प्रभावसाम्य की कल्पना कर कहते हैं—वह फूल-सा सुन्दर है, वह फूल से भी अधिक सुन्दर है आदि। फूल उसकी सुन्दरता के समक्ष टिक नहीं सकता; फूल में काँटे हैं, उसका सौन्दर्य कंटकरहित है; फूल जड़ है, उसका सौन्दर्य चेतन है आदि बातें कहकर हम उसके सौन्दर्य को अधिकांश मात्रा में व्यक्त करना चाहते हैं। संपूर्ण मात्रा में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति शायद नहीं हो सकती। यही कारण है कि अनेकानेक अलंकारों से हम उसे अभिव्यक्त करने की कोशिश करते हैं।

उपमा

दो भिन्न वस्तुओं में साधर्म्य-कथन उपमा अलंकार कहलाता है। मम्मट ने इसी कथन को पारिभाषिक रूप देकर कहा है—**साधर्म्य-मुपमाभेदे।**

उपमा अर्थालंकारों का वीजभूत अलंकार है। सभी अलंकारों में दो वस्तुओं की समता या विषमता का ही अनेक प्रकार से कथन किया जाता है। उपमा के चार अंग हैं—

(१) जिस वस्तु की तुलना की जाय—उपमेय।

(२) जिस वस्तु से तुलना की जाय—उपमान।

(३) जिस गुण या धर्म की तुलना की जाय—साधारण धर्म।

(४) जिस शब्द से उपमेय और उपमान की तुलना प्रकट हो—वाचक। उपमेय को प्रस्तुत वा विषय एवं उपमान को अप्रस्तुत या विषयी भी कहते हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

जिस वाक्य में उपमा के ये चारों अंग विराजित हों वहाँ पूर्णोपमा और जहाँ एक या एक से अधिक अंग लुप्त रहें वहाँ लुप्तोपमा होती है।

उसी तपस्वी-से लम्बे थे।
देवदारु दो-चार खड़े॥

इस पंक्ति में देवदारु की तुलना तपस्वी से की गयी है, लम्बा होना और खड़ा रहना दोनों का साधारण धर्म है। 'से' वाचक है। इसीलिये पूर्णोपमा है।

पीपर पात सरिस मन डोला।

इस पंक्ति में मन उपमेय की तुलना पीपर-पात उपमान से की गई है। डोलना दोनों का सामान्य गुण है। 'सरिस' वाचक है। अतः पूर्णोपमा है।

पत्थर-सी हों मांसपेशियाँ।
लोहे से भुजदंड अभय॥

—दिनकर

यहाँ मांसपेशियां उपमेय है, पत्थर उपमान है, सी वाचक है, पर उपमेय और उपमान के सामान्य गुण का कथन नहीं हुआ है, इसीलिये साधारण धर्म लुप्त है। दूसरी पंक्ति में भुजदंडों की तुलना लोहे से की गई है। से वाचक है और अभय होना दोनों का साधारण धर्म है। अतः इसमें सभी अंग वर्तमान हैं। पहली पंक्ति में लुप्तोपमा और दूसरी पंक्ति में पूर्णोपमा है।

कनक-से दिन मोती-सी रात।
सुनहली सांझ, गुलाबी प्रात॥

—महादेवी

प्रथम पंक्ति में क्रमशः दिन और रात उपमेय, कनक और मोती उपमान, 'से' और 'सी' वाचक हैं। साधारण धर्म का कथन नहीं है अतः धर्मलुप्ता लुप्तोपमा है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

अनन्वय

एक ही वस्तु का उपमान और उपमेय दोनों रूपों में वर्णन करना अनन्वय अलंकार कहलाता है ।

सागर है सागर सदृश गगन गगन सम जानु ।
है रन रावन राम को रावन राम समानु ॥

यहाँ सागर की तुलना सागर से, गगन की गगन से और रावण-राम का युद्ध रावण-राम के सदृश ही कहा गया है, इसीलिये अनन्वय अलंकार है ।

रूपक

उपमेय पर उपमान का निषेधरहित आरोप रूपक अलंकार कहलाता है । निषेध-रहित आरोप का अर्थ है उपमेय और उपमान में अभेद्य सम्बन्ध स्थापित करना । जैसे मुख चन्द्र है । यहाँ मुख उपमेय पर चन्द्र का आरोप है । यह आरोप सिद्ध करता है कि मुख और चन्द्र में कोई भेद नहीं है । यदि कहा जाय कि मुख के समान चन्द्र है या मुख मानो चन्द्र है तो इससे ध्वनि निकलती है कि मुख वस्तुतः चन्द्र नहीं है, वरन् चन्द्र के समान है या उसके समान हो सकता है । इसमें मुख के चन्द्र होने में निषेध का आभास है । रूपक में इसी निषेध का पूर्णतः अभाव रहता है इसीलिये इसमें उपमेय पर उपमान की निषेध-रहित आरोप तीन प्रकार से सम्भव है—जब अंगसहित उपमान का अंगरहित उपमेय के साथ अभेद्यता प्रदर्शित की जाती है तो निरंग रूपक होता है । |निराला की 'तुम और मैं' कविता में निरंग रूपक का उदाहरण हम देख सकते हैं—

तुम तुँग हिमालयशृंग,
और मैं चंचलगति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास,
और मैं कान्तकामिनी कविता ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundir

यहाँ 'तुम' पर क्रमशः तुँग हिमालय-शृंग और विमल हृदय उच्छ्वास एवं 'मैं' पर चंचल गति सुरसरिता और कान्तकामिनी कविता का निषेध-रहित आरोप है ।

यदि उपमान का अपने अंगों के साथ उपमेय के अंगों पर निषेध रहित आरोप किया जाय तो सांग रूपक होता है ।

प्रसाद जी की ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

बीती विभावरी जाग री
अम्बर-पनघट में डुबो रही तारा-घट उषा-नागरी ।
खगकुल कुल कुल सा बोल रहा कलियों का अंचल डोल रहा ।
लो यह लतिका भी भर लायी नव मुकुल सुधा रस गागरी ।

इसमें एक पनिहारिन का आरोप प्रातःकाल पर किया गया है ।

उपमान के अंग है पनिहारिन, पनघट, घट और उपमेय के अंग हैं ऊषा, अम्बर, तारा आदि । यहाँ पनिहारिन का उषा पर, पनघट का अम्बर पर और घट का तारा पर निषेधरहित आरोप है ।

जहाँ उपमेय और उपमान में कार्यकरण सम्बन्ध द्वारा अभेद्यता प्रदर्शित की जाती है वहाँ परम्परित रूपक होता है ।

राम नाम सुन्दर करतारी ।
संशय विहग उड़ावन हारी ।।

यहाँ राम नाम पर ताली के आरोप के कारण ही संशय पर विहग का आरोप है, क्योंकि ताली बजाने के कारण विहग के उड़ने का ही कार्य होता है ।

उत्प्रेक्षा

प्रस्तुत उपमेय में अप्रस्तुत उपमान की सम्भावना का वर्णन उत्प्रेक्षा अलंकार कहलाता है । उपमा में समता का वर्णन होता है जैसे मुख चन्द्रमा

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

सा है; रूपक में निषेधरहित आरोप होता है जैसे मुख चन्द्रमा है और उत्प्रेक्षा में संभावना की प्रधानता होती है—जैसे मुख मानों चन्द्रमा है। यह संभावना प्रवल संशय का ही परिणाम है। उपमेय में उपमान की संभावना तीन प्रकार से संभव है—एक वस्तु में दूसरी वस्तु का प्रवल ज्ञान या सम्भावना, जो वस्तुतः कारण नहीं है उसमें कारण की सम्भावना और जो फल नहीं है उसमें फल की सम्भावना करना। इसीके आधार पर इसके क्रमशः तीन भेद किये गये हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा।

उदाहरण—

वे किसान की नई वहू की आँखें।
ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विहग बन्द कर पाँखें॥

यहाँ आँखों को देखकर बन्द पाँखें किये विहग की सम्भावना की गई है।

मानों नभ से आग वरसती।
खोले चोंच, हाँफती जल-कण को चिड़ियों की पाँति तरसती।

यहाँ कवि का उद्देश्य है गर्मी की तीक्ष्णता का वर्णन करना। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए वह सम्भावना करता है कि नभ से मानों आग वरस रही हो।

प्रतीप

किसी प्रसिद्ध उपमान की निष्फलता के वर्णन में प्रतीप अलंकार होता है।

उपमान की व्यर्थता तथा उपमेय की सार्थकता में प्रथम प्रतीप तथा उपमान की उपमेय रूप में कल्पना करना द्वितीय प्रतीप कहलाता है।

उदाहरण—

बहुरि विचार कीन्ह मन माहीं।
सीय वदन सम हिमकर नाहीं॥

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

यहाँ सीता का मुख उपमेय के सामने हिमकर उपमान की व्यर्थता दिखाई गयी है। अतः प्रतीप है।

व्यतिरेक

जहाँ उपमेय के उत्कर्ष का अथवा उपमान के अपकर्ष का वर्णन किया जाय वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

व्यतिरेक में उपमेय का उत्कर्ष-वर्णन या उपमान का अपकर्ष-वर्णन कारण वताते हुए किया जाता है।

उदाहरण—

राधा मुख को चन्द्र-सा कहते हैं मतिरंक।
निष्कलंक है वह सदा ससि में प्रगट कलंक॥

यहाँ उपमेय राधा-मुख के सौन्दर्य का उत्कर्ष-वर्णन है और उपमान शशि के अपकर्ष का वर्णन है। कारण है, राधामुख में कलंक नहीं है और चन्द्रमा में कलंक है।

उल्लेख

एक ही वस्तु का विभिन्न प्रकार से गुण अथवा स्वरूप का वर्णन करना उल्लेख अलंकार कहलाता है।

उदाहरण—

घन घोष समझ मयूर लगे कूकने,
समझी गजेन्द्र ने दहाड़ मृगराज की।
सागर ने समझी प्रभंजन की गर्जना,
पर्वतों ने समझी कड़क महावज्र की।
गंगाधर चौंके जयघोष को समझ के,
गंगा आ रही है ब्रह्मलोक से गरजती।

आर्यावर्त्त—वियोगी

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

यहाँ जयघोष को मयूर ने घनघोष, हाथी ने सिंह की दहाड़, सागर ने तूफान की गर्जना, पर्वत ने महावज्र की कड़क और शिव ने गंगा की गर्जना समझा। इसी समझने में चमत्कार है।

आक्षेप

किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के हेतु अभीष्ट कथन का जब निषेध-सा किया जाता है तो आक्षेप अलंकार होता है।

उदाहरण—

बात कहूँगी विरहिन की मैं सुन लो यार।
तुमसे निर्दय-हृदय को कहना भी बेकार॥

यहाँ कथन के निषेध के द्वारा नायक की निष्ठुरता और नायिका के विरह की तीव्रता का वर्णन किया गया है।

अप्रस्तुत-प्रशंसा

प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति करानेवाली जो प्रस्तुताश्रया अप्रस्तुत अर्थ की प्रशंसा है वही अप्रस्तुतप्रशंसा है।

'अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया।'

—काव्य प्रकाश—मम्मट।

क्षमा शोभती उस भुजंग को,
जिसके पास गरल हो।
उसके क्या जो दन्तहीन,
विषरहित, विनीत, सरल हो।

—दिनकर

यहाँ अप्रस्तुत साँप के वर्णन से प्रस्तुत व्यक्ति का वर्णन किया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundir

पर्यायोक्ति

जब प्रकारान्तर से अभीष्ट अर्थ का कथन हो तब पर्यायोक्ति अलंकार होता है।

जल को गये लक्खन हैं लरिका—
परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयार, करौं अरु,
पाँव पखारि हौं भूभुरि डाढ़े॥

इन पंक्तियों में वन-गमन-काल में सीता थककर स्वयं विश्राम करना चाहती हैं, पर सीधे न कहकर लक्ष्मण का बहाना बनाती हैं एवं राम से विश्राम करने को कहती हैं।

समासोक्ति

विशेषण, लिंग और क्रिया तीनों की समानता के कारण प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति हो तो समासोक्ति अलंकार होता है।

ओस बिन्दु की मालाओं का भूषण भार सँभाले।
उतर रही मुग्धा ऊषा रवि के कर में कर डाले॥

—गुरुभक्त सिंह भक्त

प्रस्तुत हैं ऊषा और रवि। दोनों के वर्णन से नायक और नायिका, जो अप्रस्तुत हैं, उनका वर्णन हुआ है।

दीपक

प्रस्तुत और अप्रस्तुत में गुण, क्रिया या धर्म की समानता होने पर एक ही क्रिया या धर्म से जब दोनों का वर्णन किया जाय तो दीपक अलंकार

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

होता है। जब अनेक क्रियाओं का एक ही कारक होता है तब भी दीपक अलंकार होता है—ऐसे अलंकार को कारक दीपक कहते हैं।

रहिमन पानी राखिये बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरे मोती मानुस चून॥

यहाँ प्रस्तुत है मनुष्य, अप्रस्तुत है मोती तथा चूना। दोनों का एक ही अर्थ है 'पानी रखना'।

परिसंख्या

किसी प्रश्न के उत्तर के प्रसंग में अन्य संभाव्य उत्तरों का निषेध परिसंख्या अलंकार कहलाता है।

देह में पुलक, उरों में भार।
भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण॥
अधर में अमृत, हृदय में प्यार।
गिरा में लाज, प्रणय में मान॥

—पंत

नायिका के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी उपयुक्त वस्तुओं की स्थिति हो सकती है, पर कवि ने सबका निषेधकर नायिका में ही उनकी स्थिति का निर्देश किया है।

संदेह

प्रस्तुत में अप्रस्तुत का संशय-वर्णन ही संदेह अलंकार है।

सम्राट-भाल पर यही लाल जो टीका।
चन्दन है या लोहित प्रतिशोध किसी का॥

—दिनकर

लाल टीका प्रस्तुत है। उसे देखकर चन्दन या लोहित प्रतिशोध का संशय होता है। यही संदेह है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

अपह्नुति

प्रकृत वस्तु का निषेध कर अप्रकृत वस्तु की स्वीकृति के वर्णन में अपह्नुति अलंकार होता है। इसके शाब्दी और आर्थी दो भेद हैं।

वे दो ओठ न थे राधे।
था एक फटा उर तेरा॥

यहाँ प्रकृत वस्तु ओठों का निषेध कर अप्रकृत 'फटा उर' को प्रतिष्ठित किया गया है। इसीलिये अपह्नुति है।

अतिशयोक्ति

प्रस्तुत वस्तु का असाधारण रूप से वढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करना अतिशयोक्ति अलंकार है।

जहाँ दो वस्तुओं में भेद होने पर भी अभेद दिखाया जाय वहाँ रूपकातिशयोक्ति, अभेद होने पर भी भेद दिखाना भेदकातिशयोक्ति, दो वस्तुओं में सम्बन्ध होने पर भी असम्वद्धता दिखाना असम्बन्धातिशयोक्ति, दो वस्तुओं में सम्वन्ध रहने पर भी सम्बन्ध दिखाना सम्वन्धातिशयोक्ति, कार्य और कारण एक साथ वताना अक्रमातिशयोक्ति और जव कार्य पहले और कारण वाद में दिखाया जाय तो अत्यन्तातिशयोक्ति होती है।

बाँधा विधु को किसने इन काली जंजीरों से।
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से॥

चन्द्रमुखी जूड़ा बाँधे हैं, टीका लगाये हैं, पर उसकी प्रतीति जंजीरों में बँधे चन्द्रमा और मणियारे साँप से हुई है। दोनों में भेद रहने पर भी अभेद-वर्णन है, अतः रूपकातिशयोक्ति है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

असंगति

कारण कहीं और, और कार्य कहीं और हो तो असंगति अलंकार होता है।

तूने पैरों में लगायी मेंहदी।
मेरी आँखों में समायी मेंहदी॥

मेंहदी लगी है पैरों में, पर उसका कार्य आँखों में हो रहा है। अतः असंगति अलंकार है।

विशेषोक्ति

कारण होने पर भी जब कार्य न हो तो विशेषोक्ति अलंकार होता है।

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार।
पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार॥

अमृत बरसने पर शीतल होना अनिवार्य है; पर यह नहीं हो पाया है। अतः कारण रहते हुए भी कार्य का अभाव है।

विभावना

कारण के अभाव में भी कार्य हो तो विभावना अलंकार होता है।

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रसभोगी।
बिनु बानी बकता बरजोगी॥

बिना पैर के चलना, बिना कान के सुनना, बिना हाथ के काम करना, बिना मुख के खाना और बिना वाणी के बोलना—कारण के अभाव में कार्य हो रहा है अतः विभावना अलंकार है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundir

काव्यलिंग

किसी वाक्य या पद का अर्थ यदि वर्णनीय विषय के हेतुरूप प्रतीयमान हो तो काव्यलिंग अलंकार होता है।

कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वा खाये बौराय नर या पाये बौराय॥

धतूरे की तुलना में स्वर्ण अधिक नशीला होता है। इसी कथन की सिद्धि के लिए दूसरा वाक्य हेतुरूप में आया है। धतूरा खाने से मनुष्य बौराता है, पर स्वर्ण-प्राप्ति से ही मनुष्य पर नशा छा जाता है।

अर्थान्तरन्यास

सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन होने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपहि प्रान दह्यो॥

प्रथम वाक्य में सामान्य कथन है—प्रेम करके किसीको सुख की प्राप्ति नहीं होती। इसी का समर्थन विशेष वाक्य में किया गया है—पतंग दीपक से प्रेम करके स्वयं जल जाता है।

दृष्टान्त

जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का विम्ब-प्रतिविम्ब भाव से सम्बन्ध हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

सुख दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन।
फिर घन में ओझल हो शशि फिर शशि में ओझल हो घन॥

सुख और दुःख, शशि और घन (उपमेय और उपमान) में विम्ब-प्रतिविम्ब भाव तो है ही। दोनों का साधारण धर्म (मधुर मिलन) में भी विम्ब-प्रतिविम्ब भाव है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

निदर्शना

जहाँ वस्तुओं के परस्पर संभव या असंभव संवन्ध से उसके विम्व-प्रतिविम्ब भाव का बोध हो वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।

चुप वैठ जाना द्रोहियों से संधि करके।
आँगन में सोना है लगाके आग घर में॥

द्रोहियों से सन्धि करके चुप वैठ जाना घर में आग लगाकर आँगन में सोना है। ये दोनों विपरीत वातें हैं पर प्रभाव-साम्य से दोनों में विम्व-प्रतिविम्ब भाव आ गया है। इसीलिये निदर्शना है।

प्रतिवस्तूपमा

जहाँ विभिन्न शब्दों द्वारा उपमान और उपमेय वाक्यों का एक ही धर्म कहा जाय वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है।

एक समय में जो ग्राह्य है दूसरे समय में वहत्याज्य होता है।
उष्मा में हिम के कंवल का भार कौन ढोता है।

यहाँ "त्याज्य होना" और "भार ढोना" दोनों एक ही धर्म के दो रूप हैं। अतः प्रतिवस्तूपमा अलंकार है।

भ्रान्तिमान

सादृश्य होने के कारण एक वस्तु में दूसरी वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान भ्रान्तिमान अलंकार कहलाता है।

पाय महावर दैन को नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एँड़ी मीड़ति जाय।

नायिका की अतिशय कोमलता के कारण रक्तिम एँड़ी को महावर की लाली समझना नाइन का भ्रम है। इसी भ्रम के कारण वह एँड़ी से महावर छुड़ाने का वरावर प्रयत्न कर रही है। असत्य वस्तु का यही निश्चयात्मक ज्ञान भ्रम कहलाता है। इस भ्रम से काव्य में जो सौन्दर्य आता है वही भ्रांतिमान अलंकार है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmanc

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

स्वभावोक्ति

किसी वस्तु की जाति, गुण अथवा क्रिया का स्वाभाविकतापूर्ण वर्णन स्वभावोक्ति अलंकार कहलाता है।

फटी भीत है छत चूती है
छज्जे पर बिसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर
मिनट - मिनट पर पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते जाते
किसी तरह आदम के साँचे

—नागार्जुन

आर्थिक दुरवस्था में पले एक शिक्षक का कितना स्वाभाविक वर्णन है ?

व्याजोक्ति

प्रकट होते हुए रहस्य को किसी भाँति छिपा लेना व्याजोक्ति अलंकार है।

ललन चलन सुनि पलन में अँसुआ झलकै आय।
भई लखाइन सखिनहू झूठे ही जमुहाय।।

प्रेमी को जाते हुए देखकर नायिका की आँखों में आँसू आ जाते हैं। सखियाँ उसके इस भाव को कहीं परख न लें, इसीलिये वह जम्हाई लेकर अपने भाव को छिपाती है।

व्याजस्तुति

निन्दा के मिस प्रशंसा या प्रशंसा के मिस निन्दा को व्याजस्तुति कहते हैं।

मोहि करि नंगा अंग अंगन भुजंगा बाँधे
एरी मेरी गंगा तेरी अद्भुत् लहर है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

गंगा की निंदा प्रत्यक्ष है, पर ध्वनि निकलती है प्रशंसा की ।

उभयालंकार

जब अनेक अलंकारों की एकसाथ सापेक्ष या निरपेक्ष स्थिति हो तो उभयालंकार होता है । इसके दो भेद हैं—संकर और संसृष्टि ।

संकर

जब दूध और पानी के समान अनेक अलंकार मिल जायँ और दोनों को अलग किया जा सके तो संकर अलंकार होता है ।

काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली ।
मानिक मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली ।

प्रथम पंक्ति में संदेह है, मानिक मदिरा मे रूपक है, साथ ही अनुप्रास भी । नीलम की प्याली सी आँखें हैं—इसमें लक्ष्योपमा है । सबकी एक साथ स्थिति है इसीलिये संकर है ।

संसृष्टि

जब तिल और चावल की तरह अनेक अलंकारों की एक साथ निरपेक्ष स्थिति हो तब संसृष्टि अलंकार होता है ।

सखि नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह - सी अंबर - पथ से चली ।

'अंबर-पथ' और 'नीरवता के कंधे पर' में रूपक अलंकार एवं छाँह-सी में उपमा है । दोनों अलंकारों की निरपेक्ष स्थिति है । अतः संसृष्टि अलंकार है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

अलंकार-युग्मों में परस्पर भेद

उपमा और अनुप्रास

उपमा अलंकार का एक प्रमुख भेद है और अनुप्रास शब्दालंकार का। अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति से ध्वन्यात्मक सौन्दर्य आता है; उपमा में दो विभिन्न वस्तुओं की सादृश्य-कल्पना की जाती है।

उपमा और रूपक

उपमा में दो विभिन्न वस्तुओं में भेद रहते हुए भी गुणों की तुलना की जाती है। रूपक में दो विभिन्न वस्तुओं में निषेधरहित आरोप रहता है।

उपमा में उपमेय की अपेक्षा उपमान अधिक गुणवाला होता है, पर रूपक में समान गुण का हो जाता है। उपमा में उपमेय और उपमान की दूरी बनी रहती है, पर रूपक में यह बात नहीं होती।

उपमा में साधारण धर्म और वाचक का कथन किया जाता है, पर रूपक में केवल उपमान और उपमेय रहते हैं।

रूपक और अतिशयोक्ति

रूपक में उपमेय और उपमान दोनों का कथन किया जाता है पर अतिशयोक्ति में यह नहीं होता।

रूपक में उपमेय और उपमान का अभेद कथन होता है, पर अतिशयोक्ति में उपमेय का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन भी किया ही जाता है। साथ ही रूपकातिशयोक्ति में केवल उपमान के द्वारा ही उपमेय की अभेद प्रतीति होती है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

अध्याय—५

छन्द

काव्य-शास्त्र के अध्ययन के क्रम में छन्दों का अध्ययन अनिवार्य है। छन्द काव्य के आवश्यक तत्त्व हैं। सृष्टि के आदि काल में मानव की भाषा का रूप कैसा रहा होगा, इस विषय में अनेक विचार हैं। लेकिन यह तथ्य है कि अनुकरण, प्रयत्न-लाघव आदि के कारण ही भाषा का विकास हुआ। पशुपक्षियों की भाषा का अनुकरणकर मानव-भाषा का विकास हुआ होगा। इसके अतिरिक्त प्रकृति के संगीतमय नाद से भी मानव ने बोलना सीखा। कुछ भी हो; आदि-मानव की भाषा में नाद-माधुर्य और स्वरों का सारस्य अवश्य रहा होगा। कहने का अर्थ है कि प्रकृति ही नाद-सौन्दर्य की जन्मदात्री है और इस अर्थ में छन्दों का आदि सृष्टि के आदि से अभिन्न सम्बन्ध है।

कुछ लोगों का तो यहाँ तक विचार है कि भाषा की कमी के कारण मानव तीव्र भावावेश की अवस्था में स्वरों के उतार-चढ़ाव से ही अर्थ की अभिव्यक्ति करता होगा। ऐसे लोग तो यह भी सोचते हैं कि गद्य से अधिक सरल पद्य की भाषा है। इसीलिये पद्य में ही मानव की प्रारंभिक भाषा रही होगी। कुछ भी हो; इतना तो कहा ही जा सकता है कि ध्वनियों के लयात्मक संगठन के द्वारा ही मानव ने सर्वप्रथम अपनी भावाभिव्यक्ति की।

अत: अनेक प्रकार की ध्वनियों की लयात्मक व्यवस्था का ज्ञान जिस शास्त्र के द्वारा होता है उसे हम छन्दःशास्त्र कहते हैं। संस्कृत-साहित्य में छन्दःशास्त्र के प्रथम प्रणेता का नाम आचार्य पिंगल था। उन्हीं के नाम पर इस शास्त्र को पिंगल शास्त्र भी कहते हैं। कभी इस शास्त्र का साहित्य में बहुत महत्व था। इसके अध्येता समाज में आदर के पात्र होते थे। अब तो हालत यह है कि पिंगल छाँटना व्यर्थ बात बनाने का पर्याय हो

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

गया है। इससे आधुनिक समाज में साहित्य के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है।

हिन्दी-साहित्य में छन्दःशास्त्र का प्रणयन मध्यकाल में ही आरंभ हो गया था। संस्कृत के छन्दःशास्त्र से हिन्दी के छन्दःशास्त्र ने प्रभाव ग्रहण किया है अवश्य, पर इतना नहीं कि इसकी मौलिकता नष्ट हो जाय। इस सम्बन्ध में रघुनन्दन शास्त्री का वक्तव्य द्रष्टव्य है—'भारतीय छन्दस्तत्व के विकास में हमें तीन प्रकार की अवस्थाएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं—स्वरतत्व-प्रधान, ध्वनितत्व-प्रधान और कालतत्व-प्रधान। वैदिक छन्द स्वरतत्व - प्रधान हैं। इनमें छन्द की गति ऊँची-नीची स्वर-लहरियों (Rising and falling tones) पर अवलंबित है। संस्कृत के छन्द इनमें लय का आधार छोटी, बड़ी या ह्रस्व और दीर्घ ध्वनियों (Short and long sounds) पर है। परन्तु हिन्दी के छन्द प्राकृत और अपभ्रंश छन्दों के समान कालतत्व (Time element) को प्रधानता देते हैं। अर्थात् इनमें छन्द का लय के लिये ध्वनि की मौलिक ह्रस्वता या दीर्घता पर विचार नहीं किया जाता, अपितु किसी ध्वनि के उच्चारण में जो काल लगता है, उसके आधार पर ध्वनि की ह्रस्वता या दीर्घता का विचार किया जाता है।"

—हिन्दी छन्द-प्रकाश, प्राक्कथन

मध्यकालीन हिन्दी के कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा हिन्दी-छन्दों की परम्परा को पुष्ट किया।

छन्दःशास्त्र की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ

छन्दः—हम उन नियमों को छन्द कहेंगे जिनमें विभिन्न प्रकार की लघु और दीर्घ ध्वनियों का लयात्मक सामंजस्य हो।

पादः—छन्द के उस सन्तुलित खण्ड को पाद कहेंगे जिनमें उनके ध्वनियों का सन्तुलन हो। यह छन्द की इकाई है।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

उदाहरण—

मैं नीर भरी दुख की बदली।

—महादेवी

सम्पूर्ण कविता की इकाई यही एक पंक्ति है। बाद की पंक्तियाँ इसी की ध्वनियों के अनुरूप बनी हैं।

पाद को ही चरण या पद भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, छन्द का पैर यही है जिस पर कविता का ढाँचा खड़ा होता है।

वर्ण—ह्रस्व या दीर्घ किसी एक स्वरवाली ध्वनि का नाम वर्ण है। व्यंजन वर्ण में स्वर का संयोग रहता है। स्वर वर्ण में ह्रस्व या दीर्घ किसी को भी एक इकाई माना जा सकता है। जैसे—'इ' 'ई' उ, ऊ, ए, ऐं ये सभी एक-एक वर्ण हैं। उसी प्रकार रा, मा, की, ली, न ये सभी एक-एक वर्ण हैं।

मात्रा—ध्वनि की सबसे छोटी इकाई को मात्रा कहते हैं। इसका निर्धारण उच्चारण-काल पर निर्भर करता है। उच्चारण के समय की सबसे छोटी इकाई एक मात्रा कहलाती है। जैसे अ एक मात्रा है, अ + अ = आ के उच्चारण में दुगुना समय लगता है इसीलिए इसमें दो मात्राएँ हैं।

मात्राओं में केवल स्वरों की ही गिनती होती है व्यंजनों की नहीं। जैसे—क (क् + अ) इसमें एक ह्रस्व स्वर है अतः एक मात्रा है। क्व (क् + व् + अ) इसमें भी एक ही स्वर है अतः मात्रा एक है। क्या (क् + य् + आ) इसमें दीर्घ स्वर है अतः दो मात्राएँ हैं। मात्राओं की गणना स्वर की ह्रस्वता या दीर्घता पर निर्भर करती है। इसी आधार पर मात्राओं के दो भेद किये गये हैं—ह्रस्व और दीर्घ। ह्रस्व में एक मात्रा और दीर्घ में दो मात्राएँ होती हैं। ह्रस्व को लघु और दीर्घ को गुरु कहते हैं। लघु का प्रतीक (।) पाई है और दीर्घ का प्रतीक (ऽ) अंग्रेजी का 'एस' अक्षर है।

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmanc

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

अनुस्वार और विसर्ग वाले सभी वर्ण गुरु होते हैं। जैसे अं, कं, चं, अः, कः, चः, ये सभी दीर्घ हैं, अतः इनमें दो-दो मात्राएँ हैं।

किसी शब्द में संयुक्त वर्ण के पूर्व का अक्षर गुरु माना जाता है, जैसे सत्य (ऽ।) यहाँ 'स' पर अधिक वल पड़ता है, इसीलिए गुरु है। पर जिस शब्द में संयुक्ताक्षर के पूर्व कोई वर्ण नहीं हो वह ह्रस्व ही माना जाता है जैसे ध्वनि (ध्व – । + नि – ।) में दो मात्रायें हैं। चन्द्रविन्दु (ँ) वाले वर्णों को ह्रस्व माना जाता है। आँख = तीन मात्राएँ।

अन्ततः यही कहा जा सकता है कि जिस वर्ण के उच्चारण में द्विगुणित भार पडे उसे गुरु और जिसके उच्चारण में काल की सबसे छोटी इकाई लगे उसे लघु कहेंगे।

गण—मात्रा या वर्णों की क्रमिक रूप से सजावट को समझाने के लिये छन्दःशास्त्र के आचार्यों ने जिस प्रतीक-विधान अथवा संकेत-अक्षरों की कल्पना की है उसे गण कहते हैं। अक्षर-क्रम की तीन अवस्थाएँ होती हैं—आदि, मध्य और अन्त। आदि, मध्य और अन्त में कहाँ गुरु हो और कहाँ लघु इसका नियमन गण के द्वारा ही किया जाता है। इसीलिये एक गण में तीन अक्षरों की एक इकाई मानी जाती है। इन गणों की संख्या आठ है जिनके अक्षर-क्रम का विधान निम्नलिखित है—

प्रतीक चिह्न

(१) मगण	ऽ ऽ ऽ	सीताजी
(२) नगण	। । ।	कलम
(३) भगण	ऽ । ।	कानन
(४) यगण	। ऽ ऽ	सताना
(५) जगण	। ऽ ।	सहास
(६) रगण	ऽ । ऽ	वालिका
(७) सगण	। । ऽ	सकना
(८) तगण	ऽ ऽ ।	पाताल

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

छन्दों के अध्ययन में प्रस्तुत गणों को स्मरण रखना उपादेय है। इसे स्मरण रखने के लिए प्रस्तुत सूत्र उपादेय है :—

'यमाताराजभानसलगा' ।

इस सूत्र में क्रमवद्ध रूप से एक अक्षर से तीन तक की मात्राओं को गिन लें। आरंभिक अक्षर में गण लगा दें, फिर लघु गुरु का चिह्न तीनों अक्षरों तक देते जाँय। इस प्रकार एक के बाद दूसरा अक्षर और इस तरह आठों गण के लिये क्रम से आठ अक्षर लें और प्रत्येक के आगे दो अक्षरों तक गिने :—

य	(यगण)	यमाता	ऽ।।	ज	(जगण)	जभान	।ऽ।
मा	(मगण)	मातारा	ऽऽऽ	भा	(भगण)	भावस	ऽ।।
ता	(तगण)	ताराज	ऽऽ।	न	(नगण)	वक्षल	।।।
रा	(रगण)	राजभा	ऽ।ऽ	स	(सगण)	सलगा	।।ऽ

यति—यति का अर्थ होता है विश्राम। छन्द के मध्य या अन्त में जव रुकने की आवश्यकता होती है तो यति दी जाती है। अर्ध विराम अथवा पूर्ण विराम यति का चिह्न है। लयात्मकता के निर्वाह के लिए यति आवश्यक है।

गति—गति का अर्थ है प्रवाहमयता। काव्य के लिये गीतिमयता या प्रवाहमयता आवश्यक गुण है। मात्राओं या वर्णों को इस क्रम से वैठाया जाय कि उसमें गति आवे, प्रवाह आवे, क्योंकि इसी गति के कारण लयात्मकता की रक्षा हो पाती है। इसके विना गद्य और पद्य में कोई अन्तर नहीं। मात्राओं की संख्या में समानता होने पर भी यदि उसे व्यवस्थित ढंग से सजाया नहीं जाता है तो कविता में गति नहीं आ पाती है।

अन्त्याक्षर अथवा तुक—यह कोई आवश्यक नहीं कि एक पाद का वर्ण दूसरे पाद के अन्तिम वर्ण से मिलता ही हो, पर नाद-सौन्दर्य और माधुरी के लिए प्रायः ऐसा किया जाता है। दोहे और चौपाई छन्दों में

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

तुक अथवा अन्त्याक्षरों के मिलने के कारण बहुत सौन्दर्य आ जाता है। कभी-कभी तुक मिलाने के चक्कर में व्याकरण को भूल जाना अथवा शब्दों को तोड़ना-मड़ोरना अनुचित है।

हिन्दी में दो प्रकार के छन्द प्रयुक्त होते हैं—वर्णिक और मात्रिक। वर्णों की व्यवस्था वर्णिक छन्द में और मात्राओं की व्यवस्था मात्रिक छन्द में होती है। हम दोनों छन्दों से कुछ के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत कर अपना कथन समाप्त करना चाहेंगे।

चौपाई

सम मात्रिक छन्द में चौपाई बहुत प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। पाद या चरण के अन्त में जगण (।ऽ।) अथवा तगण (ऽऽ।) नहीं होता है।

वन्दउ गुरु पद पदुम परागा।
ऽ।। ।। ।। ।।। ।ऽऽ =१६
सुरुचि सुवास सरिस अनुरागा॥
।।। ।ऽ। ।।। ।।ऽऽ =१६
अमिय भूरिमय चूरन चारू।
।।। ऽ।।। ऽ।। ऽऽ =१६
समन सकल भवरुज परिवारू॥
।।। ।।। ।।।। ।।ऽऽ =१६

कुंडल

२२ मात्राओं वाले चरण का यह सममात्रिक छन्द है। १२ और १० मात्राओं पर यति होती है। अंत में दो गुरु (ऽऽ) की व्यवस्था होती है।

चलन चलन श्याम कहत, कोउ लेन आयो।
।।। ।।। ऽ। ।।।, ऽ। ऽ। ऽऽ=२२
नन्द भवन भनक सुनी, कंस कहि पठायो॥
ऽ। ।।। ।।। ।ऽ, ऽ। ।। ।ऽऽ =२२

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

रोला

रोला के एक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं। ११ और १३ मात्राओं पर यति होती है। अन्त में दो गुरु (ऽऽ) या दो लघु (।।) होते हैं। रोला छन्दों में यति के विधान में प्रायः उलटफेर भी हुआ है।

सुनि पिय के रस वचन, सबन रिस छाँड़ि दियो है
।। ।। ऽ ।। ।।।, ।।। ।। ऽ। ।ऽऽ = २४
हँसि - हँसि अपने कण्ठनि, लाल लगाय लियो है।
।। ।। ।।ऽ ऽ।। ऽ। ।ऽ। ।ऽऽ = २४

दिगपाल छन्द

यह भी २४ मात्राओं के चरण वाला सम-मात्रिक छन्द है जिसमें १२, १२ मात्राओं पर यति का विधान है।

मैं ढूंढता तुझे था, जब कुंज और वन में।
ऽऽ।ऽ ।ऽ ऽ, ।। ऽ। ऽ। ।। ऽ = २४
तू खोजता मुझे था, तब दीन के वतन में॥
ऽ ऽ।ऽ ।ऽ ऽ, ।। ऽ। ऽ ।।। ऽ = २४

गीतिका

वर्णिक और मात्रिक दोनों में इस छन्द का प्रयोग होता है।

सम-मात्रिक छन्दों में यह २६ मात्राओं के चरण वाला छन्द है जिसमें १४ और १२ मात्राओं पर यति होती है और अंत में लघु और गुरु (।ऽ) की व्यवस्था होती है।

साधु भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे।
ऽ। ऽ ऽ ऽ ।ऽऽ, ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ = २६
सभ्यता की सीढ़ियों पै, सूरमा चढ़ने लगे॥
ऽ।ऽ ऽ ऽ।ऽ ऽ, ऽ।ऽ ।।ऽ ।ऽ = २६

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

चौपैइया या चतुष्पदी

३० मात्राओं के चरणवाला यह महातैथिक जाति का छन्द है । १०, ८, और १२ मात्राओं पर यति होती है । चरण के अन्त में गुरु होता है ।

भए प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौसल्या हितकारी
। । ।।। ।ऽऽ, ऽ। ।ऽऽ ऽऽऽ ।।ऽऽ = ३०
हरषित महतारी, मुनिमनहारी, अद्भुत रूप निहारी
।।।। ।।ऽऽ ।।।।ऽऽ ऽ ।। ऽ। ।ऽऽ = ३०
लोचन अभिरामा, तनु घनश्यामा, निज आयुध भुजचारी
ऽ।। ।।ऽऽ, ।। ।। ऽ ऽ, ।। ऽ।। ।।ऽऽ = ३०
भूषण वन माला, नयन विशाला, शोभा सिन्धु खरारी
ऽ।। ।। ऽऽ, ।।। ।ऽऽ, ऽऽ ऽ। ।ऽऽ = ३०

आल्हा या वीर छन्द

अश्वावतारी जाति के इस छन्द में ३१ मात्राओं का एक चरण होता है जिसमें ८, ८, और १५ मात्राओं पर यति होती है । चरण के अन्त में गुरु और लघु (ऽ।) की व्यवस्था होती है ।

मुर्चा लौटो, तब नाहरको, आगे बढ़े पिथौरा राय
ऽऽ ऽऽ ।। ऽ।।ऽ ऽऽ ।ऽ ।ऽऽ ऽ। = ३१
नौ सै हाथिन, के हलका मा, इकले घिरे कनौजी राय
ऽ ऽ ऽ।।, ऽ ।।ऽ ऽ ।।ऽ ।ऽ ।ऽऽ ऽ। = ३१

बरवै

चार चरणों के इस अर्धसम छन्द के प्रथम और तृतीय चरणों में १२-१२ और द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में ७-७ मात्रायें होती हैं । तुलसी और रहीम ने इसका सुन्दर प्रयोग किया है ।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

लहरत लहर लहरिया,
ꠐꠐꠐꠐ ꠐꠐꠐ ꠐꠐꠐऽ = १२
लहर बहार = ७
ꠐꠐꠐ ꠐऽꠐ
मोतिन जरी किनरिया,
ऽꠐꠐ ꠐऽ ꠐꠐꠐऽ = १२
विथुरे वार
ꠐꠐऽ ऽꠐ = ७

दोहा

इस लोकप्रिय छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में १३-१३ और द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में ११-११ मात्रायें होती हैं। चरण के अन्त में विराम होता है। सम पाद के तुक मिले होते हैं, पाद के अन्त में लघु होता है और विषम पाद के अन्त में जगण नहीं आना चाहिये।

रहिमन निज मन की विथा
ꠐꠐꠐꠐ ꠐꠐ ꠐꠐ ऽ ꠐऽ = १३
मनही राखो गोय
ꠐꠐऽ ऽऽ ऽꠐ = ११
सुनि अठिलैहें लोग सब
ꠐꠐ ꠐꠐऽऽ ऽꠐ ꠐꠐ = १३
बाँटि न लै हैं कोय
ऽ ꠐ ꠐ ऽ ऽ ऽ ꠐ = ११

सोरठा

दोहे का उलटा सोरठा होता है। इसके सम पादों में १३-१३ और विषम पादों में ११-११ मात्रायें होती हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

वंदउ गुरु पद कंज
ऽ।। ।। ।। ऽ। = ११
कृपासिंधु नर रूप हरि
।ऽऽ। ।। ऽ। ।। = १३
महा मोह तम पुंज
।ऽ ऽ। ।। ऽ। = ११
जासु वचन रवि कर निकर
ऽ। ।।। ।। ।। ।।। = १३

कुण्डलिया

इस प्रसिद्ध छन्द में छः चरण होते हैं। प्रथम दो चरण दोहे के और अन्तिम चार रोला के होते हैं। दोहे के चार चरणों को दो गिना जाता है। दोहे का अंतिम चरण रोला के प्रथम चरण में दुहराया जाता है। प्रत्येक चरण में २४-२४ मात्राएँ होती हैं।

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को ठाउँ न रहत निदान॥
ठाउँ न रहत निदान जियत जग में जस लीजै।
मीठे वचन सुनाय, विनय सबही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि रहत सबही के दौलत॥

इन्द्रवजा

यह वर्णिक छन्द का एक उपभेद हैं, त्रिष्टुप जाति के इस छन्द के प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं जो निम्न क्रम से रखे जाते हैं:—

तगण	तगण	जगण	गुरु	गुरु
ऽऽ।	ऽऽ।	।ऽ।	ऽ	ऽ

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

मैं राज्य की चाह नहीं करूँगा। =११ वर्ण
है जो तुम्हें इष्ट वही करूँगा॥
संतान जो सत्यवती जनेगी।
राज्याधिकारी वही बनेगी॥

भुजंगप्रयात

प्रत्येक चरण में १२ वर्णों वाले इस वर्णिक छन्द में क्रमिक रूप से चार यगण (I S S) की व्यवस्था होती है।

अरी व्यर्थ है व्यंजनों की बड़ाई।
हटा थाल तू क्यों इसे साथ लाई॥
वही पार है जो बिना भूख भावे।
बता किन्तु तू ही उसे कौन खावे॥

द्रुतविलंबित

नगण, भगण, भगण और रगण (III, SII, SII, SIS) क्रम से रखे जाने वाले इस वर्णिक छन्द के प्रत्येक चरण में १२ वर्ण होते हैं।

समर का जब निश्चय हो गया।
समिति भंग हुई उस काल ही॥
सफल होकर गूढ़ प्रयास में।
हरि उठे कुरू-राज समाज से॥

मालिनी

प्रत्येक चरण में १५ अक्षरों वाले इस वर्णिक छन्द का क्रम निम्न है—

नगण	नगण	मगण	यगण	यगण
III	III	SSS	ISS	ISS

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

पल पल जिसके मैं पंथ को देखती थी
निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिलखती
उर पर जिसके है सोहती मुक्त माला
वह नव नलिनी से नैन बाला कहाँ है।

मंदाक्रान्ता

प्रत्येक चरण में १७ अक्षरों वाले अत्यधिक जाति के इस वर्णिक छन्द में अक्षरों का क्रम निम्नलिखित है—

मगण	भगण	नगण	तगण	तगण	गुरु	गुरु
ऽऽऽ	ऽ।।	।।।	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ	ऽ

दो वंशों में, प्रकट करके, पावनी लोक लीला;
सौ पुत्रों से, अधिक जिनकी, पुत्रियाँ पुण्यशीला।
त्यागी भी हैं, शरण जिनके, जो अनासक्त गेही;
राजा योगी, जय जनक वे, पुण्यदेही विदेही॥

मत्तगयंद सवैया

प्रत्येक चरण में २५ अक्षरों वाले इस वर्णिक छन्द में क्रम से सात भगण (ऽ।।) और अन्त में दो गुरु की व्यवस्था होती है।

जाल प्रपञ्च पसार घने कुल गौरव का उर फाड़ रहा है।
मानव मण्डल में मिल दाहक दानव दुष्ट दहाड़ रहा है॥
जाति समुन्नति की जड़को कर घोर कुकर्म उखाड़ रहा है।
भूल गया प्रभु शंकरको जड़ जीवन जन्म उखाड़ रहा है॥

मुक्त छन्द

आधुनिक नई कविता में मुक्त छन्द का बहुत प्रयोग देखा जाता है। इसे लोग व्यंग्य से रबर छन्द भी कहते हैं, पर इस छन्द का प्रसार विरोधों

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

के बावजूद भी अधिकाधिक हो रहा है। इसका कारण है, मुक्त छन्द ध्वन्यात्मकता पर आधारित होता है। हृदय के आवेग को अबाधित गति से श्रोता तक पहुँचाने का काम जितनी सुन्दरता से इस छन्द के द्वारा हो सकता है उतनी सुन्दरता से अन्य छन्दों के द्वारा नहीं। आधुनिक कवि के लिये वर्णों और मात्राओं के गिनने का समय नहीं है, वह जो अनुभव करता है उसे प्रभावोत्पादक ढंग से कह देना चाहता है। यही कारण है कि छन्द-बन्धन की मुक्तता की आवश्यकता का उन्होंने अनुभव किया। मुक्त छन्द में वर्णों और मात्राओं की संतुलित संख्या नहीं रहती, पर वह मूलतत्व अवश्य रहता है जिस पर छन्द की भित्ति खड़ी है। लयात्मकता, प्रवाहमयता आदि की अपेक्षा इस छन्द में है। निराला की प्रसिद्ध कविता 'जुही की कली' पढ़ते समय हमें जिस प्रवाह और लय के सामंजस्य का अनुभव होता है उसका उदाहरण लें :—

विजन वन वल्लरी पर।
सोती थी सुहाग भरी॥
स्नेह स्वप्न मग्न
अमल कोमल तनु तरुणी।
जुही की कली॥

इस छन्द में लिखनेवाले कवियों में, अज्ञेय, नागार्जुन, शमशेर वहादुर सिंह, आदि का नाम उल्लेखनीय है। इस छन्द में उत्तमोत्तम रचनाओं के लिखे जाने की सम्भावना है।

— ——

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

अध्याय–६

शब्द-शक्ति

हमारी अभिव्यक्ति के माध्यम शब्द हैं। इन्हीं का आधार ग्रहण कर वक्ता या कवि अपनी मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति करता है। वक्ता या कवि किसी खास ढंग की बात को कहने के लिये कोई खास ढंग के शब्द का प्रयोग करते हैं। ऐसा क्यों होता है? कारण स्पष्ट है, किसी खास ढंग के शब्द में ही किसी खास ढंग के अर्थ को अभिव्यक्त करने की शक्ति है। शब्दों में अर्थाभिव्यक्ति की इसी क्षमता को अथवा अर्थ प्रकट करने के इसी व्यापार या कार्य को शब्दों की शक्ति कहा जाता है।

हम दो प्रकार के शब्द सुनते हैं—एक का आधार केवल ध्वनि होने से ध्वन्यात्मक और एक का आधार केवल वर्ण होने से वर्णात्मक होते हैं। वर्णात्मक शब्द कभी सार्थक होते हैं और कभी निरर्थक। सार्थक शब्द पद कहे जाते हैं। ये पद जब-जब विशेष्य या विशेषण-वाचक होते हैं तो उनको नाम कहा जाता है और जब ये पद क्रियावाचक होते हैं तो आख्यात कहलाते हैं। ऐसे पदसमूह, जो संपूर्ण अर्थ के द्योतक हों, वाक्य कहलाते हैं। वाक्य में योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति का रहना आवश्यक है। पद के अर्थों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने में किसी तरह की बाधा का न होना योग्यता है, एक दो पदों को सुनकर वाक्यार्थ पूरा करने के लिए अन्य पदों की जिज्ञासा करना आकांक्षा है और एक पद सुनकर दूसरा पद सुनते समय पहले पद का सम्बन्ध-ज्ञान बना रहना आसक्ति कहलाता है।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध चिर पुरातन है। दर्शनशास्त्रियों और

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

कवियों ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध की तुलना माया और ब्रह्म से की है। शब्द मायारूप है और अर्थ ब्रह्मरूप। तुलसीदास के शब्दों में—

गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दऊँ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥

शब्दों की इस महत्ता से जोवलोक परिचित है। हमारे कथन का उद्देश्य तीन प्रकार के अर्थों की अभिव्यक्ति है। एक तो वस्तुगत, अर्थात् जो समक्ष है, जिसके रूप और गुण से हम परिचित हैं, उसका निर्देश। दूसरा, पद से सम्वन्धित अन्य अर्थ, अर्थात् वस्तु के रूप अथवा गुण की तुलना में अन्य वस्तु की अभिव्यक्ति—जैसे मोहन गदहा है। यहाँ गदहा के गुण मोहन पर आरोपित हैं। मोहन गदहे के समान मूर्ख है यह अभिप्रेत अर्थ है। तीसरा है व्यंग्यार्थ का प्रकाशन। इन तीन प्रकार के अर्थों के प्रकाशन के लिए हम जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं उन्हें तीन भागों में बाँटा जा सकता है—वे हैं—वाचक, लक्षक और व्यंजक। वाचक शब्द से प्रकाशित अर्थ, वाच्यार्थ लक्षक से लक्ष्यार्थ और व्यंजक से व्यंग्यार्थ होते हैं।

शब्द की जिन शक्तियों के कारण अर्थों की अभिव्यक्ति का कार्य होता है वे क्रमशः अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहलाते हैं। इन्हें हम निम्न प्रकार से रख सकते हैं :—

शब्द	शक्ति	अर्थ
वाचक	←—— अभिधा ——→	वाच्यार्थ
लक्षण	←—— लक्षणा ——→	लक्ष्यार्थ
व्यंजक	←—— व्यंजना ——→	व्यंग्यार्थ

वाचक शब्द

साक्षात् संकेतिक अर्थ के वोधक शब्द को वाचक कहते हैं।

संसार शब्दों का भांडार है। प्रत्येक शब्द एक निश्चित अर्थ के

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

वोधक हैं। पर शब्दों से अर्थ के सम्बन्ध का ज्ञान प्राप्त किये विना हम उनके साक्षात् संकेतिक अर्थ को मालूम नहीं कर सकते हैं। शब्द और अर्थ के इसी सम्बन्ध-ज्ञान को संकेत-ग्रह कहते हैं। किसी भी शब्द के साक्षात् संकेतिक अर्थ का संकेत ग्रहण हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं :—

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ।
वाक्यश्च शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ॥

अर्थात् व्याकरण, उपमान, कोष, आप्तवचन (माननीय व्यक्तियों के द्वारा निर्धारित अर्थवाला शब्द) व्यवहार, वाक्यशेष, विवृति, प्रसिद्ध पद का सान्निध्य। इनकी अलग-अलग व्याख्या अपेक्षित होगी।

व्याकरण—प्रत्यय और उपसर्ग एवं शब्दों के लिंग, वचन और उत्पत्ति का ज्ञान होने से हम उसके साक्षात् संकेतिक अर्थ को जानते हैं। जैसे—वल—प्रवल—प्रवलता, आदि।

उपमान—दो वस्तुओं के सादृश्य ज्ञान के द्वारा हम जिस वस्तु को नहीं देख सके हैं उसका भी अर्थ जान सकते हैं। जैसे मोहन सोहन के समान लम्वा है। मोहन की लम्वाई का पता है, सोहन की लम्वाई का पता उसीसे मिल जाता है। दो वस्तुओं में एक का गुण, रूप मालूम होना चाहिये तभी दूसरे का पता चल सकेगा।

कोष—कोष में शब्दों के जो अर्थ दिये होते हैं उससे भी हम संकेत ग्रहण कर सकते हैं।

आप्तवचन—कोई प्रामाणिक व्यक्ति जव किसी वस्तु से अनभिज्ञ लोगों के सामने उस वस्तु का नाम वताता है; तो वही नाम उस वस्तु का द्योतक होता है।

व्यवहार—वस्तुतः वस्तुओं का सही अर्थ हम व्यवहार के द्वारा ही जान सकते हैं। वचपन से ही हम जो वस्तु व्यवहार में लाते हैं, उसके आधार पर ही हम उसे जान पाते हैं।

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

वाक्यशेष—जिन पदों का अर्थ हम जानते हैं उनकी सहायता से अज्ञात अर्थवाले पद को भी जाना जा सकता है।

विवृति—किसी पद की व्याख्या से भी नये अर्थ प्रकाश में आते हैं। आचार्य विशेश्वर ने मम्मट के मत (संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेव वा) की पुष्टि करते हुए व्यक्ति में संकेत-ग्रहण की शक्ति न मानकर व्यक्ति के उपाधिभूत जाति, गुण, क्रिया तथा यदृच्छा रूप धर्मों में ही संकेत-ग्रह माना है।

अभिधा शक्ति

अभिधा शब्दों की वह प्रथमा शक्ति है जिससे साक्षात् संकेतिक अर्थ का बोध होता है।

ये वाचक शब्द तीन प्रकार के होते हैं—रूढ़ि, यौगिक और योगरूढ़। रूढ़ शब्द का खंड नहीं होता। जैसे घोड़ा, हाथी। यौगिक शब्दों में प्रकृति-प्रत्यय का योग होता है और इसके खंडों के सम्मिलित अर्थ का बोध होता है जैसे गृहपति, गृह = घर, पति = स्वामी—घर का स्वामी और योगरूढ़ से किसी विशेष अर्थ की पुष्टि होती है। गणनायक = गणेश।

उदाहरण—

पार्वती गणपति को बहुत चाहती थी।

यहाँ पार्वती शब्द से पर्वत की पुत्री का बोध होता है और गणपति से गणेश का बोध होता है। यही इसका साक्षात् संकेतिक अर्थ है।

लक्षक शब्द

रूढ़ि या प्रयोजन के कारण जिन शब्दों के मुख्य अर्थ को छोड़कर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ प्रकट हों, उन्हें लक्षक शब्द कहते हैं। लक्षक शब्द से ध्वनित अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं। जैसे—'भारत महान् है।' भारत का अर्थ यहाँ भारत देश नहीं, वरन् भारत के लोग हैं। जैसे यही लक्ष्यार्थ है।

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

लक्षणा शक्ति

लक्षणा शब्दों की वह द्वितीया शक्ति है जिसके कारण रूढ़ि या प्रयोजन के द्वारा मुख्यार्थ की बाधा हो और मुख्यार्थ से ही सम्बन्धित अन्य अर्थ प्रकट हो।

आचार्य मम्मट के अनुसार :—

> मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
> अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया॥

अर्थात् मुख्य अर्थ की बाधा होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण शब्द के जिस व्यापार अथवा क्रिया के द्वारा मुख्य अर्थ से सम्बन्ध रखनेवाला अन्य अर्थ लक्षित हो उसे लक्षणा व्यापार या लक्षणा शक्ति कहते हैं। इस प्रकार लक्षणा शक्ति की तीन स्थितियाँ हैं—१. मुख्यार्थ की बाधा, २. मुख्यार्थ का अन्य अर्थ (लक्ष्यार्थ) से सम्बन्ध, ३. रूढ़ि अथवा प्रयोजन।

प्रस्तुत उदाहरण से हम इसे समझ सकते हैं :—

> अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
> आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥

आँचल में दूध नहीं हो सकता। अतः मुख्य अर्थ की बाधा है। पर कवि का प्रयोजन है मातृत्व का आधिक्य प्रकट करना। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये आँचल से सामीप्य सम्बन्ध के कारण स्तन में दूध का होना यह लक्ष्यार्थ प्रकट है।

लक्ष्यार्थ की सिद्धि के लिए रूढ़ि अथवा प्रयोजन का होना अनिवार्य है। रूढ़ि कहते हैं प्रयोग-प्रवाह को और प्रयोजन कहते हैं कवि के किसी विशिष्ट उदेश्य की सिद्धि के लिए कही गई उक्ति को।

राजपूताना वीर है। यहाँ राजपूताना प्रदेश का वीर होना बाधित है; पर परम्परा से राजपूताना प्रदेश में रहनेवाले के लिए 'राजपूताना' शब्द

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

का प्रयोग होता रहा है अतः इस रूढ़ि के कारण 'राजपूताना वीर है' का लक्ष्यार्थ 'राजपूताना में रहने वाले वीर हैं' होता है।

ए रे मतिमन्द चन्द आवत न तोही लाज।
होके द्विजराज काज करत कसाई के॥

कवि का प्रयोजन है नायिका के विरह को इतना वढ़ाकर कहना कि शीतल चाँदनी भी उसके लिये विष तुल्य हो। इसी प्रयोजन की सिद्धि के लिये चन्द्रमा को कसाई कहा गया है। कसाई का काम काटना है, चन्द्रमा यह काम नहीं करता इसलिए मुख्यार्थ वाधित है, लेकिन कसाई जिस प्रकार हत्या का व्यवसाय करता है उसी प्रकार चन्द्रमा वियोगिनी नायिका के लिये हत्यारा सिद्ध हो रहा है। यहीं कवि के प्रयोजन की सिद्धि हो जाती है।

रूढ़ि और प्रयोजन को आधार वनाकर लक्षणा के कई भेद किये गये हैं। संक्षेप में भेदों का वर्गीकरण निम्न रूप में है।

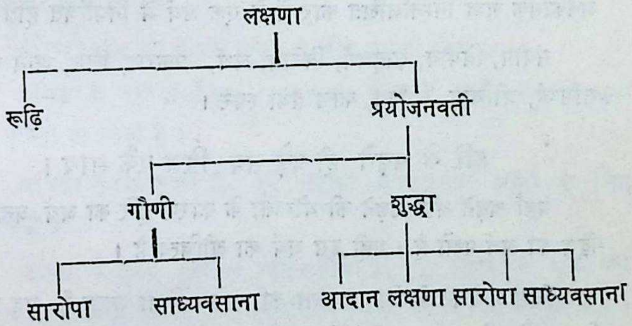

व्यंजक शब्द

वाचक और लक्षक शब्दों के वाद व्यंजक शब्दों का स्थान आता है। वाचक तथा लक्षक शब्द जिन अर्थों को प्रकट करते हैं उसके वाद जो अर्थ वच जाता है उसे व्यंजन शब्दों के द्वारा प्रकट किया जाता है। व्यंजक शब्दों से प्रकट अर्थ को व्यंग्यार्थ कहा जाता है।

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

व्यंजना शक्ति

व्यंजना शक्ति शब्दों की वह तृतीया शक्ति हैं जो अभिधा तथा लक्षणा द्वारा छोड़े गये अकथित अर्थ को प्रकट करती है।

अभिधा तथा लक्षणा शक्ति जब अपने-अपने अर्थ प्रकट कर विरत हो जाती है तो व्यंजना शब्दों के मूल्य में छिपे व्यंग्यार्थ को प्रकट करती है। अभिधा स्पष्टतः अर्थ प्रकट करती है, लक्षणा अर्थ को सूचित करती है; परन्तु व्यंजना शब्द और अर्थ की ध्वनि मात्र से किसी विशेष अर्थ की प्रतीति कराती है। शब्द और अर्थ के आधार पर व्यंजना के दो भेद होते हैं—शाब्दी और आर्थी।

शाब्दी व्यंजना के दो भेद होते हैं—'अनेकार्थक शब्दों के एक अर्थ में नियंत्रित हो जाने के बाद शब्द की जिस शक्ति के बाद उन शब्दों से दूसरा अर्थ ध्वनित होता है उसे अभिधामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं। अनेकार्थक शब्द निम्नलिखित कारणों से एक अर्थ में नियन्त्रित होते हैं :—

संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, अर्थ, प्रकरण, लिंग, अन्य सन्निधि, सामर्थ्य, औचित्य, व्यवित, काल तथा स्वर।

हरि के चढ़ते ही उड़े सब द्विज एकै साथ।

यहाँ चढ़ने और उड़ने की योग्यता के कारण हरि का अर्थ बन्दर और द्विज का अर्थ पक्षी है। यही इस अर्थ का औचित्य है।

जिस प्रयोजन के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है वह प्रयोजन जिस शक्ति के द्वारा प्रतीत होता है उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं। गंगायां घोषः = गंगा पर घर है, इससे वक्ता का प्रयोजन है गंगा की समीपता के कारण शीतलता और पवित्रता आदि की सूचना देना। यहाँ व्यंग्य ही प्रधान है न कि सूचना। इसीलिये लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना है।

आर्थी व्यंजना में वक्ता, वोद्धव्य वाक्य, अन्य सन्निधि, वाच्य,

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

n Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding

प्रस्ताव, देश, काल और चेष्टा की विशेषता के कारण व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है।

मैं सुकुमारि नाथ वन जोगू।
तुम्हहिं उचित तप मो कँह भोगू।।

यहाँ काकु के कारण वक्ता के कथन का अर्थ बदल गया है। वन-गमन के समय राम द्वारा विरोध किये जाने पर सीता की यह उक्ति है। वह कहती है—मैं सुकुमारी और नाथ वन के योग्य, आपके लिये उचित तपस्या और मेरे लिये भोग ? इस कथन से व्यंग्यार्थ निकलता है। सीता के साथ राम भी सुकुमार हैं, यदि उनके लिये तपस्या उचित है तो सीता के लिये भी तपस्या ही उचित है।

उपर्युक्त दस माध्यमों के कारण आर्थी व्यंजना के दस भेद होते हैं।

शब्द-शक्तियों में परस्पर भेद

अभिधा और लक्षणा

अभिधा शब्द की प्रथमा शक्ति है और लक्षणा द्वितीया।

अभिधा में जहाँ अर्थों का स्पष्ट कथन होता है वहाँ लक्षणा में अर्थों की सूचना दी जाती है।

अभिधा सर्वजनसुलभ है, पर लक्षणा बुद्धिप्रधान लोगों के लिए सुलभ है।

अभिधा में मुख्य अर्थ का कथन होता है, पर लक्षणा में मुख्य अर्थ की वाधा होती है एवं उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ की कल्पना की जाती है। अभिधा में अर्थ के प्रकट होने में रूढ़ि या प्रयोजन किसी की भी आवश्यकता नहीं होती पर लक्षणा इन्हीं के द्वारा अर्थों की सूचना देती है।

अभिधा और व्यंजना

व्यंजना विशिष्ट अर्थों को ध्वनित करती है, पर अभिधा शब्दों के

bal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmar

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

मुख्य अर्थ को ही स्पष्ट करती है। व्यंजना शब्द की अन्तिम शक्ति है जो ध्वनि के आधार पर ही अर्थ को प्रकाशित करती है, इसमें अर्थ न तो कथित होता है और न सूचित, वल्कि ध्वनित होता है, पर अभिधा में अर्थ कथित होता है। साक्षात् संकेतित अर्थ का कथन करने वाली अभिधा को कुछ लोग उत्तम काव्य मानते हैं। 'अभिधा उत्तम काव्य है'—देव। पर व्यंग्यप्रधान होने के कारण व्यंजना परिष्कृत रुचिवाले पंडितों के मध्य सर्वोत्तम कोटि में गिनी जाती है। अभिधा का क्षेत्र विस्तृत है, पर व्यंजना कम लोगों की समझ में आने के कारण सीमित क्षेत्र वाली है।

लक्षणा और व्यंजना

लक्षणा शब्द की द्वितीया शक्ति है जो शब्द के मुख्य अर्थ को समाप्त कर रूढ़ि या प्रयोजन के कारण उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ की सूचना देती है। व्यंजना का आधार मुख्य अर्थ नहीं होता, वह विशिष्ट अर्थ की अभिव्यंजना कराती है। लक्षणा शब्द के मुख्य अर्थ से सम्बन्धित अर्थ पर आधारित होती है, पर व्यंजना शब्द के अनेक अर्थों में काकु, औचित्य, काल, व्यक्ति आदि के कारण किसी खास अर्थ को ध्वनित करती है। लक्षणा को समझनेवालों का क्षेत्र अभिधा की अपेक्षा कम और व्यंजना की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है।

Acc. No. 8452

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathma

Public Domain. Digitization by eGangotri.Fundin

al Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

प्रकाशन की अन्य कृतियाँ

पं० श्री रुद्रदत्त पाठक जी की कृतियाँ–

१. भारतीयरत्नचरितम् [वाराणसेय संस्कृत वि. वि. के शास्त्री, मगध वि. वि. के बी. ए., ऑनर्स एवं एम. ए. के पाठ्यक्रम में स्वीकृत तथा यू. एस. ए. में शोध के हेतु अग्रसारित]

२. उपनयन-विवाह चन्द्रिका

३. श्राद्ध पारिजात

४. विश्व भूगोल [मुद्रणार्थ]

५. माधुरी [समाज की आधुनिक समस्याओं का हिन्दी में लिखा गया सर्वश्रेष्ठ उपन्यास—मुद्रणार्थ]

६. सम्मेलनमन्दिरम् [वंगला उपन्यास का संस्कृत में प्राञ्जल अनुवाद]

श्री महेन्द्र मिश्र एम. ए. (द्वय) की कृतियाँ–

७. हिन्दी-काव्यानुशासन [द्वितीय भाग, मुद्रणार्थ]

८. हम सब कार्टून हैं—श्रेष्ठ व्यंग काव्य [मुद्रणार्थ]

९. संत्रास– श्री मदनमोहन तरुण द्वारा लिखित हिन्दी में शैली का अतुलनीय उपन्यास [मुद्रणार्थ]

व्यवस्थापक—

डा० शिवदत्त पाठ

विष्णु प्रकाशनम्, देव (गया

पुस्तक प्राप्तिस्थान—

१. विष्णु प्रकाशनम् देव (गया)

२. श्री घन... शोकहरा, वर...

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman